इतिहास दिवाकर

भारतीय इतिहास चिन्तन एवं लोक जीवन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

प्रवेशांक (वर्ष १, अंक १) चैत्र मास कलियुगाब्द ५११० अप्रैल २००८

मार्गदर्शक :
ठाकुर राम सिंह
डॉ० शिवाजी सिंह
श्री चेतराम
श्री इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक समिति :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
डॉ० वेद प्रकाश अग्नि
प्रो० सतीश मित्तल
सुश्री चारु मित्तल

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी
गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)

मूल्यः
प्रति अंक —१०.०० रुपये
वार्षिक —४०.०० रुपये

मुख्य पृष्ठ :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति
शोध संस्थान,परिसर

इतिहासः कुशाभासः सूकरास्यो महोदरः।
अक्षसूत्रं घटं विभ्रत्पंकजाभरणान्वितः॥

सृष्टि संवत् का आरम्भ श्वेत वाराह कल्प से होता है, अतः 'इतिहास पुरुष' वाराह मुख है। काल का विशाल स्वरूप इतिहास के उदर में समाहित होने के कारण इन्हें महोदर (विशाल उदर वाला) कहा गया है। पार्थिव इतिहास का रंग—रूप पृथ्वी के प्रतिनिधि श्रेष्ठ पदार्थ कुशा के रंग—रूप से आभासित होता है, अतः इन्हें कुशाभास कहा गया है। इतिहास काल के संख्यात्मक निर्देश से सूत्रित है, इसलिए इतिहास पुरुष एक हाथ में अक्षसूत्र धारण किए है। ज्ञानामृत का दान इतिहास का पावन उद्देश्य होने के कारण इनके दूसरे हाथ में अमृत घट विद्यमान है। इतिहास पुरुष का यह शरीर कमल आभूषणों से विभूषित है — कमल सौन्दर्य, विकास और आनन्द का प्रतीक है जो कि इतिहास का पावन स्वरूप है।

अनुक्रमणिका

क्र०सं०	विषय	लेखक	पृ०संख्या
	संदेश		३-५
	सम्पादकीय		६
१.	हम अपने को पहचानें	कुप्प०सी० सुदर्शन	६
२.	शोध संस्थान में भारत का भविष्य	महन्त सूर्यनाथ	१२
३.	भारतीय इतिहास की गौरवाशाली परम्परा	सुरेश सोनी	१३
४.	इतिहास का सत्य प्रतिपादन : राष्ट्र की प्रबल शक्ति	केदार नाथ साहनी	१४
५.	All Haves Belongs to Almighty	InderJit Kapur	१५
६.	भारत के इतिहास का विनाश व विकृतिकरण एवं उसका निराकरण	ठाकुर रामसिंह	१६
७.	समर्थ गुरू रामदास जी की ४००वीं जयन्ती	चेतराम	२३
८.	सिकन्दर अभियान की मुख्य स्रोत सामग्री और उसकी पराजय	कृष्णानंद सागर	२४
६.	Invasion of India by so called World Conquer Alexander-the-Great, His death in Dwigart	Vivek Jyoti	२६
१०.	विश्व विख्यात इतिहास महापुरूष परशुराम	डॉ० ओ०पी० शर्मा	३४
११.	विश्व का एक आदर्श सम्राट : राजा बाण वट्ट	डॉ० रमेश शर्मा	३८
१२.	आस्था दीप : टौणी देवी मन्दिर	स्व० डॉ० लश्करीराम राठौर	३६
१३.	नासदीय सूक्त : राष्ट्रीय गान	स्वामी विवेकानन्द	४१
१४.	ध्येय की ओर बढ़ते कदम	प्रेम सिंह भरमौरिया	४२
१५.	वन्दे मातरम्	बंकिम चन्द्र चटर्जी	४३
	चित्र साक्षी हैं		४५-४८

प्रोफेसर शिवाजी सिंह
राष्ट्रीय अध्यक्ष,
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
पूर्व विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय

शिवाला नगर,
मोहद्दीपुर,
गोरखपुर–2730008(उ0प्र0)

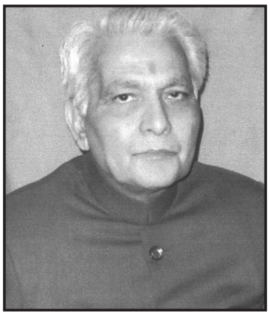

संदेश

यह जानकर अत्यन्त हर्ि ति हूँ कि ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति ोध संस्थान अपनी त्रैमासिक ोध पत्रिका 'इतिहास दिवाकर' का प्रकाशन प्रारम्भ कर रहा है।

भारतीय इतिहास के पुनरुद्धार, प्रकाशन एवं प्रचार की दिशा में यह ोध संस्थान अमूल्य योगदान कर रहा है। इसके प्रकाशन स्तरीय हैं और अत्यन्त अल्प समय में इसने तीन महत्त्वपूर्ण वि ायों पर सफल रा ट्रीय परिसंवाद आयोजित कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है। यह भी उल्लेखनीय है कि यह ोध संस्थान इतिहास लेखन हेतु साहित्य एवं पुरातत्त्व के अतिरिक्त लोक–साहित्य तथा ाब्द–परम्परा से भी सामग्री संकलित करने में सचे ट है।

इतिहास एक महत्त्वपूर्ण वि ाय है। सामूहिक सामाजिक स्मृति के एक बड़े हिस्से तथा प्रभावकारी मानस के प्रधान अंग के रूप में इतिहास हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का वाहक होता हैं। इतिहास हमारी सामाजिक अस्मिता को निर्मित एवं परिभाि ात करता है, हमें विगत अनुभवों से सबक लेने की सीख देता है तथा संकट के समय हमें समुचित संबल प्रदान करता है। इसीलिये रा ट्रीय चेतना के विकास में समुचित इतिहास–ज्ञान की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'इतिहास दिवाकर' हमारी रा ट्रीय चेतना के विकास में अग्रणी भूमिका निभायेगा। मैं इसकी सफलता और दीर्घ जीवन के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

शिवाजी सिंह

प्रेम कुमार धूमल
मुख्य मन्त्री

एलर्जली
शिमला–171002

हिमाचल प्रदेश

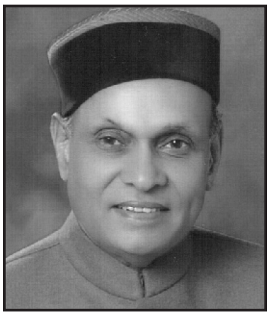

संदेश

“मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति ोध संस्थान, नेरी, जिला हमीरपुर, द्वारा संस्थान की पत्रिका ‘इतिहास दिवाकर’ का प्रकाशन प्रारम्भ किया जा रहा है।

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति ोध संस्थान, नेरी, की स्थापना का मूल उद्देश्य प्रकृति और मानव समाज के सभी पक्षों का तथ्यों पर आधारित ोध करना तथा इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं से वर्तमान व भावी पीढ़ियों का परिचय करवाना रहा है ताकि हमारी युवा पीढ़ी अपने देश के गौरवमयी इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर सके। संस्थान इतिहास वेत्ता ठाकुर राम सिंह जी के मार्ग दर्शन में सराहनीय कार्य कर रहा है जिसके लिए मैं सभी ोधकर्त्ताओं को बधाई देता हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि संस्थान की पत्रिका ‘इतिहास दिवाकर’ के माध्यम से विभिन्न वि यों पर ोध की जानकारी सभी पाठकों तक पहुँचेगी और इतिहास के अब तक अप्रचारित रहे तथ्य उजागर हो सकेंगे।

पत्रिका के प्रवेशांक के सफल प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक ुभकामनाएं।

(प्रेम कुमार धूमल)

हिन्दी के मध्यम श्रेणी समाचार पत्रों में नं. 1

दैनिक उत्तम हिन्दू

पंजाब, हिमाचल, हरियाणा, दिल्ली व उत्तर प्रदेश में वितरित

DAILY UTTAM HINDU

Head Office : A-23/1, FOCAL POINT EXTENSION, JALANDHAR - 4
Regd. Office : EK-202/6, PHAGWARA GATE, JALANDHAR - 144 001
Ph. : 0181-2601557, 2602076, 2602838 Fax : 0181-2602762, 5058823

संदेश

"समाज यदि जीवित रा ट्र पुरु ा है तो इतिहास इस रा ट्र का जीवन चरित्र और संस्कृति, इसका अंतरंग मन, मस्ति क और आत्मा है। इतिहास यदि कृतित्व है तो संस्कृति व्यक्तित्व। दोनों एक दूसरे से अविभाज्य और परस्परावलंबी हैं। संस्कृति भावी इतिहास का मार्ग प्रशस्त करती है। इतिहास संस्कृति का शिल्पी है और संस्कृति इतिहास की प्रेरणा" डा० वा०मो० आठले के उपरोक्त कथन से स्प ट है कि इतिहास और संस्कृति का आपसी रिश्ता उसी तरह है जैसे ारीर और आत्मा का। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए ही ायद किसी ने कहा था कि जिस समाज या रा ट्र को न ट करना हो उसके इतिहास को न ट कर दें। भारत सदियों से गुलाम रहा, इस कारण इसके इतिहास व संस्कृति को लेकर ासक वर्ग ने बहुत सी भ्रांतियां पैदा की। आज हम आज़ाद हैं, हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम अपनी भावी पीढ़ियों को अपनी सभ्यता, संस्कृति और इतिहास से उचित ढंग से परिचित करायें। आज जिस तरह का इतिहास पढ़ाया जा रहा है वह एक प्रकार से थोपा हुआ इतिहास है। अंग्रेजी ासकों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए जो कुछ लिखा या लिखवाया वो भारतीयों में हीन भावना पैदा करने हेतु ही किया गया है। हमारी परम्पराओं और संस्कारों के उज्ज्वल पक्ष के प्रति अंग्रेज जानबूझकर उदासीन ही रहे। आज भारतीयों के बीच अपनी संस्कृति के प्रति ुद्ध भावना जगाने की आवश्यकता है और यह तभी सम्भव होगा जब हम अपने देश वासियों के समक्ष सही ढ़ंग से अपना इतिहास रख सकेंगे। ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति ोध संस्थान नेरी, द्वारा प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका इतिहास दिवाकर भारतीय इतिहास में पैदा भ्रांतियों को दूर करने में तो सहायक होगी ही, साथ में ऐतिहासिक घटनाक्रम को भारतीय दृ टकोण से भारतीयों के सम्मुख पेश कर उनमें अपनी संस्कृति के प्रति ुद्ध भावना जागृत करने में भी सफल रहेगी। इस पुनीत कार्य के लिए संस्थान के सभी सदस्यों को ुभ कामनाएं।

इरविन खन्ना

सम्पादकीय

जय जय रघुवीर समर्थ

अत्यन्त सुखद संयोग है कि इतिहास दिवाकर का प्रवेशांक ऐसे सुमंगल अवसर पर प्रकाशित हो रहा है जब इस वर्ष की रामनवमी के अवसर पर परम पूज्य राष्ट्र सन्त समर्थ गुरु रामदास जी की 400 वीं जयन्ती है। समर्थ गुरु रामदास जी भगवान् राम के परम उपासक थे जिन्होंने श्री राम जय राम जय जय राम के त्रयोदशाक्षरी महामंत्र से निश्चेतन समाज की सुप्त शक्ति को जगा कर अध्यात्म शक्ति और राष्ट्र भक्ति का चैतन्य प्रकाश सर्वत्र फैलाया। उन्होंने जन–जन में जय जय रघुवीर समर्थ का विश्वास जगाया और समाज को प्रेरित किया कि यदि हम अपने कार्य को पूरी निष्ठा से करते हैं तो सर्व समर्थ प्रभु श्रीरघुवीर की कृपा से सब कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं। किसी भी कार्य को सफल बनाने में व्यक्ति का योगदान तो रहता है लेकिन मूलतः प्रत्येक सफलता में रघुवीर समर्थ का ही हाथ होता है। इस सम्बन्ध में एक सन्दर्भ का उल्लेख प्रासंगिक होगा कि शिवा जी महाराज ने जब एक दुर्ग का निर्माण करवाया तो उसके अद्वितीय निर्माण पर उनमें कुछ अभिमान का भाव उभर आया। समर्थ गुरु रामदास जी को इस भाव का आभास हो गया। उन्होंने शिवा जी को पास की चट्टान तुड़वाने के लिए कहा। चट्टान तोड़ी गई तो उसमें एक पूर्ण स्वस्थ मोटा कीड़ा बन्द था। गुरु समर्थ ने कहा, बन्द चट्टान में भी यह प्राणी जी रहा है और पूर्ण स्वस्थ है। उन्होंने जय जय रघुवीर समर्थ का उद्घोष किया। शिवाजी को मिथ्या अभिमान का बोध हो गया और उन्होंने गुरु चरणों को स्पर्श कर अपनी गलती स्वीकार कर ली। अतः जय जय रघुवीर समर्थ में अगाध विश्वास के साथ इतिहास दिवाकर, लोक और राष्ट्र के वैभवशाली प्रामाणिक इतिहास को प्रकाश में लाने के लिए निरन्तर निष्ठापूर्वक प्रयासरत रहेगा।

यह भी एक मंगलमय संयोग है कि इतिहास दिवाकर के प्रकाशन तथा नव संवत्सर कलियुगाब्द 5110 का शुभारम्भ एक साथ हो रहा है। भारतीय परम्परा में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को वर्ष प्रतिपदा कहते हैं। यह दिन नये वर्ष का पहला दिन होता हैं। भारतवर्ष में अनेक संवत् प्रचलित हैं जिनमें विक्रमी संवत् और शक संवत् सर्वाधिक व्यवहार प्रसिद्ध हैं। विक्रमी संवत् का उत्तरी और मध्य भारत में प्रतिष्ठित स्थान है तथा पश्चिमी और दक्षिणी भारत में मुख्यतः शक संवत् का प्रचलन है।

विक्रमी और शक आदि संवत् जो भारत भूमि पर पुष्पित पल्लवित हुए हैं, का व्यवहार निस्संदेह हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान को प्रतिबिम्बित करता है लेकिन, इस बात की जानकारी भी अवश्य रहनी चाहिए कि ये संवत् किसी व्यक्ति या किसी घटना विशेष से सम्बन्धित होने के कारण काल गणना के वैज्ञानिक आधार नहीं हो सकते। कालगणना का सीधा सम्बन्ध काल से है, इसलिए काल से जुड़ी कालगणना ही वैज्ञानिक कालगणना मानी जा सकती है। इस दृष्टि से संवत्सरों की कालगणना में कलियुगाब्द का विशेष महत्व है। कलियुगाब्द का सम्बन्ध भारत की ऋषि प्रज्ञा द्वारा अपनी सम्पुष्ट योग साधना की दिव्य अन्तर्दृष्टि से साक्षात्कृत कालगणना पर आधारित है जिसकी विवेचना भारतीय खगोल एवं ज्योतिष शास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध है। काल से उत्पन्न कालक्रम को भारतीय मनीषा द्वारा कल्प, मन्वन्तर, युगों आदि में विभाजित किया गया है।

हिन्दू समाज में किसी धार्मिक अनुष्ठान को आरम्भ करते हुए पढ़े जाने वाले संकल्प पाठ के माध्यम से भारतीय कालगणना पूर्ण रूप में संरक्षित रही है जिसके अनुसार इस समय सृष्टि सर्जक भगवान ब्रह्मा के आयु के दूसरे परार्ध में श्वेत वाराह नामक कल्प के अन्तर्गत वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें कलियुग का प्रथम चरण प्रचलित है। संकल्प पाठ के प्रारम्भिक अंश में यह उल्लेख इस प्रकार हुआ है–

ॐ अद्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे...

कल्प, मन्वन्तर, चतुर्युग का उल्लेख सभी हिन्दू पंचांगों में किया होता है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन पुरोहितों द्वारा जो वर्षफल पत्रक पढ़ा जाता है, उसमें भी कल्पादि भारतीय कालगणना का उल्लेख होता है। जैसे इस वर्ष विक्रमी संवत् चैत्र सौर मास की 24 प्रविष्टे, 6 अप्रैल, 2008 को चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन नया संवत् आरम्भ हो रहा है। उस दिन पढ़ा और सुना जाने वाला वर्षफल पत्रक में लिखा होगा

अथ श्रीमन्नृपति वीरविक्रमादित्य राज्यात् संवत् 2065 शालिवाहन शके 1930 साम्प्रतं कल्पादिगतवर्षाणि 1,97,29,49,109 कलिगतवर्षाणि 5109 भोग्यकलिवर्षाणि 4,26, 891 अथाऽस्मिन वर्षे बार्हस्पत्यमानेन प्लवनामक संवत्सरोऽस्ति...

इस काल विवरण के अनुसार स्पष्ट है कि प्लव नामक विक्रमी संवत् 2065 के आरम्भ होने तक कलियुग के 5109 वर्ष बीत चुके हैं तथा इस वर्ष प्रतिपदा को नव संवत्सर कलियुगाब्द 5110 आरम्भ हुआ है और इसी के साथ नेरी शोध संस्थान के क्षितिज पर इतिहास दिवाकर का उदय हुआ है।

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी, प्रखर राष्ट्र चिन्तक इतिहासवेत्ता ठाकुर राम सिंह जी की उदात्त संकल्पना है। ठाकुर जी के ध्येय साधक संकल्प, वैचारिक गहनता और संगठन कौशल से यह संस्थान पूर्ण विकसित होकर सार्थक दिशा में आगे बढ़ रहा है। इस संस्थान का भूमि पूजन एवं शिलान्यास प्रो० प्रेम कुमार धूमल, माननीय मुख्यमन्त्री , हिमाचल प्रदेश के कर कमलों द्वारा आश्विन शुक्ल प्रतिपदा, कलियुगाब्द 5104(7 अक्तूबर,2002) को किया गया। इसके बाद माननीय सरकार्यवाह श्री मोहन राव भागवत जी के कर कमलों द्वारा फाल्गुन शुक्ल 11, कलियुगाब्द 5106(21 मार्च, 2005) को प्रथम चरण में संस्थान के श्रीमती उत्तम देवी कपूर भवन का उद्घाटन हुआ। संस्थान परिसर में परम पूज्य गुरु गोलवलकर जी की जन्म शताब्दी समारोह श्रृंखला के अन्तर्गत कार्तिक शुक्ल 5, कलियुगाब्द 5108(27अक्तूबर, 2006) को परम पूज्य सरसंघचालक माननीय कुप्प०सी०सुदर्शन जी के कर कमलों द्वारा माधव भवन का उद्घाटन किया गया। इस अवसर पर 'तथाकथित विश्व विजेता सिकन्दर महान् का भारत पर आक्रमण तथा उसका त्रिगर्त –जम्मू के चन्द्रभागा क्षेत्र में डोगरा वीरों के हाथों मारा जाना'विषय पर तीन दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का भी आयोजन हुआ। इन कार्यक्रमों के उद्घाटन अवसर पर प०पू०सरसंघचालक मा० सुदर्शन जी, प०पू०महंत सूर्यनाथ जी, श्री सुरेश सोनी जी मा० सह सरकार्यवाह, गोवा के महामहिम पूर्व राज्यपाल श्री केदारनाथ जी साहनी ने महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विचार व्यक्त किए। उन्हें पत्रिका में लेख रूप में दिया जा रहा है। भारत के इतिहास का विनाश व विकृतिकरण एवं उसका निराकरण विषय पर ठाकुर राम सिंह जी का शोध लेख इतिहास दिवाकर की आकांक्षा का प्रदीप है। प्रान्त कार्यवाह चेतराम जी का लेख समर्थ गुरु रामदास की चतुर्थ जन्म शताब्दी की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस लेख में प्रातः स्मरणीय युग प्रवर्तक राष्ट्र भक्त संत समर्थ गुरु रामदास जी के जीवनादर्शों को जनमानस तक पहुंचाने के लिए, इन संत की चतुर्थ जन्म शताब्दी के कार्यक्रम पूरे देश में वर्ष भर आयोजित करवाने का आह्वान है। इसके अतिरिक्त पत्रिका में सम्मिलित अन्य विद्वानों की सामग्री भी ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष उपादेय है।

इतिहास दिवाकर का प्रवेशांक सुधी पाठकों के हाथों सौंपते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही हैं। भारतीय चिन्तन और दर्शन की विपुल ज्ञान राशि हमारे शास्त्र ग्रन्थों में विद्यमान है, हमारी लोक परम्पराओं में परिव्याप्त है। इससे सम्बन्धित रचनाओं के लिए सम्मान्य लेखकों से विनम्र निवेदन है। पत्रिका बारे में सब के अभिमत हमारा सदैव मार्गदर्शन करते रहेंगे। सब के आत्मीय सहयोग से इतिहास दिवाकर भारत के इतिहास, संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान–विज्ञान की समस्त विधाओं को अपने उद्देश्य की पूर्ति के प्रति पूर्ण आशावान् है।

जय जय रघुवीर समर्थ।

विनीत

डॉ0 विद्या चन्द ठाकुर

हम अपने को पहचानें

• कुप्प०सी० सुदर्शन, प०पू० सरसंघचालक

ऋषि अरविन्द ने कहा है *'भूतकाल का गौरव, वर्तमान की पीड़ा और भविष्य के सुनहरे सपने जिस देश के नौजवानों में हों, वह देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है।'* जब तक हम यह नहीं जानते कि हम क्या थे? हम उससे बढ़कर हैं या गिरे हुए हैं, तब तक हम यह निश्चित नहीं कर सकते कि भविष्य में हमें क्या करना है? यह अस्पष्टता की स्थिति खत्म होनी चाहिए। हम क्या थे? यह विकृत किया गया है। वर्तमान में भी हमें सब वही पढ़ाया जाता है– हम सदा गुलाम रहे, हमारी कोई उपलब्धि नहीं रही है। हमें कुछ लेना है तो वह विदेशों से ही लेना है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखते हैं कि अंग्रेज का बच्चा अच्छी तरह जानता है कि उसके पूर्वजों ने कौन–कौन से पराक्रम किए हैं? किन–किन देशों में वाणिज्य व्यवस्था का विस्तार किया है, हमारी कौन–कौन सी वैज्ञानिक उपलब्धियां रही हैं। अत: उनके मन में स्वत: ही भाव जाग्रत होता है कि मैं भी अपने पुरखों के समान वही रण गौरव, धन गौरव और वही वाणिज्य गौरव अर्जित करूंगा। हमारे बच्चों को ठीक इससे विपरीत पढ़ाया जाता है। तुमने कभी साम्राज्य स्थापित नहीं किया। बस, हमें तो दूसरों की नकल करनी है। हमें सातवीं–आठवीं में पढ़ाया जाता था कि हमारे लोगों ने जो स्वतंत्रता समर किया था– वह गदर था, विद्रोह था। हम अंग्रेजों से विद्रोह करते थे। जब कोई कार्नवालिस, वार्नहेस्टिंग अपनी सेना लेकर विजय प्राप्त करता था तो उसे बड़ी खुशी दिखाकर पढ़ाया व समझाया जाता है कि इन गदर करने वालों को दबाएं।

हिन्दुत्व से एक देश

मैं छुटपन से ही संघ की शाखा में जाने लग गया था। संघ के कार्यक्रमों में बौद्धिक वर्ग सुनकर यह समझ में आया कि अंग्रेज किस प्रकार के चालाक थे। वे अच्छी तरह से जानते थे कि भारत एक देश है। शुरू–शुरू में तो यहां की भिन्न–भिन्न बोलियां, खान–पान, उपासना पद्धति को देखकर वे हैरान हुए कि यह कैसे एक देश है? पर उन्होनें देखा कि ***हिन्दुत्व एक ऐसा तत्त्व है जो पूरे देश को जोड़ता है। आसाम का व्यक्ति भी अपने को हिन्दू बोलता है तो पंजाब का भी। कन्याकुमारी का आदमी भी अपने को हिन्दू बोलता है तो कश्मीर का भी। हिन्दुत्व सबको जोड़ता है।*** अंग्रेजों ने सोचा क्यों न इस सूत्र को ही तोड़ दिया जाए। इससे यह सब बिखर जाएगा। हिन्दू शब्द को हीनार्थक शब्द के रूप में प्रचारित करना शुरु कर दिया। हिन्दू यानि गुलाम, पराजित, हारा हुआ आदि–आदि प्रचार कर दिया गया। दूसरे उन्होंनें कहा, 'धर्म यानि रिलीजन'। हमारे धर्म की अवधारणा के लिए उनके पास कोई शब्द ही नहीं था। हमारे यहां जो लोग पूजा करते हैं, व्रत करते हैं और तीर्थाटन करते हैं, उसे एक रिलीजन समझ लिया। जैसे मुस्लिम रिलीजन है, क्रिश्चिन रिलीजन है, वैसे ही हिन्दू रिलीजन। हमारे अंग्रेजी पढ़े हुए भी धर्म को रिलीजन समझते हैं।

हमारे यहां मातृधर्म है, पितृधर्म है जो कि सब कर्तव्य हैं। हमें यह शरीर प्रकृति से मिला है तो इसे प्रकृति के अनुकूल चलाना पड़ेगा। यहां ठंड कुछ कम है। कल धर्मशाला में थे तो वहां इससे अधिक थी। कुछ दिनों बाद बर्फ पड़ जाएगी। केरल में पूरे वर्ष गर्मी रहती है। इसलिए वहां मन्दिर के अन्दर नियम है कि पुरुष ऊपर का हिस्सा खुला कर के जाएंगे। कन्याकुमारी में भी ऐसा ही है मगर यह काम बद्रीनाथ में किया तो वापिस आना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए किस प्रकृति में क्या पहनना है, क्या खाना है यह सब विधान बना हुआ है। पिछले दिनों यूरोप में एक पुस्तक छपी। २०० प्रकार के व्यंजन। हमारे एक ही जिले में २०० प्रकार के व्यंजन बनने की विधि लोग जानते है। देश में तो कई हजारों प्रकार के व्यंजन हो जायेंगे। हम जिस प्रकार के परिवेश में रहते हैं, हमें अपने शरीर की अवधारणा भी उसी प्रकार के खान–पान, रहन–सहन एवं रीति–रिवाजों के अनुरूप बनानी पड़ती है। स्त्री का एक पति होना चाहिए या अनेक? हमारे यहां दोनों है। हम लाहौल–स्पिति व किन्नौर चले जाएं तो वहां सब भाईयों की मिलकर एक ही पत्नी थी। हम कहें, ये गलत कर रहे हो, यह गलत कैसे? द्रौपदी के पांच पति थे कि नहीं। वनांचलों में एक ही पुरूष की ३–४ पत्नियां हैं। हम पूछें, तुम्हारे इतनी पत्नियां क्यों हैं? तो कहते हैं एक पत्नी घर में रसोई का काम करती है, दूसरी खेत में काम करने साथ जाती है और तीसरी दुकान व अन्य काम करती है। वह इन सब कामों को पूरा करने के लिए नौकर तो रख नहीं सकता है। ऐसा ही हमारे कपड़ा बुनने वाले करते हैं। दो–तीन शादियां करते हैं। सभी मिलकर घर में काम करते हैं। इससे उसे कपड़ा बनाना आसान हो जाता है और आसानी से बिकता है। वह नौकर रखने की क्षमता नहीं रखता है। परिस्थिति विशेष में वातावरणानुसार दायित्व का निर्वहन करना होता है। इस प्रकार की परिस्थितियाँ आचार धर्म का मूल मानी गई हैं। प्रकृति के अनुसार जीवन रचना व्यक्ति अपने सारे संसाधन प्रकृति से प्राप्त करता है। प्रकृति के पास इतने अधिक संसाधन नहीं है कि वे हमारे लोभ को पूरा कर सके। इसलिए हमने प्रकृति को माता कहा है। बच्चा माँ से उतना ही दूध लेता है, जितनी उसको आवश्यकता होती है। यदि माँ जबरदस्ती देती भी है तो वह नहीं लेता है। पश्चिम इसे सारी गपोड़–बाजी मानता रहा है। क्या ये हिन्दू पेड़ को माँ, पत्थर को माँ, पशु को माँ कहते हैं? हमारा खूब मजाक उड़ाया गया है। आज सारा विश्व कह रहा है, हमने प्रकृति का शोषण किया है, उसे बर्बाद किया है, अपनी अनुचित मांगो को पूरा करने में लगे रहे और आज पर्यावरण की समस्या खड़ी हो गई है।

न्यूयार्क में पृथ्वी सम्मेलन

यदि पर्यावरण को ठीक रखना है तो हमें मिलकर विचार करना होगा। इसी बात को लेकर के न्यूयार्क में २००४ को एक पृथ्वी

सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में १०६ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। तीन दिन के गहन विचार—विमर्श के बाद सभी ने ४० बिन्दुओं को सुनिश्चित किया कि इस पर सब की सहमति होने पर पर्यावरण की कुछ रक्षा की जा सकती है। उस सम्मेलन में भारत का नेतृत्व डा० कर्ण सिंह जी कर रहे थे। अन्तिम दिन डा० कर्ण सिंह ने अथर्ववेद का भूमि सूक्त पढ़ा, जिसमें प्रकृति की रक्षा का वर्णन है। उसका अंग्रेजी अनुवाद कर सभी प्रतिनिधियों में बांट दिया। सबने उसे बड़े ध्यान से पढ़ा और पाया कि जिन बिन्दुओं पर वे तीन दिन से विचार—विमर्श कर रहे हैं, वे तो सारे उस सूक्त में थे। सुनिश्चित ४० के अतिरिक्त २२ और बिन्दु उसमें थे। पूरे ६२ बिन्दुओं को सर्वसम्मति से सम्मेलन में पारित किया गया।

सारी दुनिया हिन्दू है

नस्ल और असल से सारी दुनिया हिन्दू है। घटना १९६० की है। तत्कालीन शृंगेरी के शंकराचार्य से मिलने एक अमेरिकन मठ में आया। शंकराचार्य से बोला, 'मुझे हिन्दू बना दो।' शंकाराचार्य जी बोले, 'तुम्हें हिन्दू तो तब बनायें जब तुम हिन्दू न हो'? अमेरिकन हैरानी से बोला, 'मैं! तुम्हारी बात नहीं समझा'? प्राकृतिक रूप से जो भी मनुष्य पैदा होता है वह हिन्दू ही होता है। ईसाई और मुस्लमान तो बाद में बनता है। मुस्लमान सुन्नत करने से बनता है और ईसाई बत्तीसमा करने से बनता है— यह शंकराचार्य बोले। इस पर अमेरिकन ने कहा, 'तुम बहुत बड़ा दावा कर रहे हों' शंकराचार्य बोले, मैं अपना दावा छोटा नहीं कर सकता।' अमेरिकन बोला कि आपकी बात मुझे समझ में नहीं आ रही। उन्होंने कहा, अच्छा यह बताओ कि तुम यह मानते हो कि जब तक ईसा मसीह के प्रति विश्वास नहीं किया जाता तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती। बोले हां। तो ईसा मसीह कब हुए? वे आज से २००० साल पहले हुए। जिन्होंने जीसस क्राइस्ट को न देखा न सुना? क्या उन्हें मोक्ष नही मिलेगा? तो क्या वे सब नरक में जांएगे? जब से सृष्टि अस्तित्व में आई है और मनुष्य भी अस्तित्व में आया होगा तभी से मोक्ष का प्रावधान व साधन पृथ्वी पर विद्यमान है। हम उसे वेद मानकर चलते हैं। उसके बाद जितने भी मजहब आए, उनके सामने एक ही समस्या रही कि आदि ज्ञान क्या है? और वह है वेद। इसी के आधार पर मनुष्य ने अपने ज्ञान का विकास किया है।

नासा के सेवा निवृत वैज्ञानिक एस० चन्द्रा

मैं आप को एक अद्‌भुत घटना सुनाता हूँ। मंगलूर में एक एस० चन्द्रा जी है। उन्होंने नासा में वैज्ञानिक के रूप में १५ वर्षों तक कार्य किया। अब वहां से वापिस भारत आ गए हैं। उनकी इच्छा है कि मेरे पास जो ज्ञान है वह मैं देश की भलाई में लगाना चहाता हूँ। उन्होंने वेदों का परम्परागत रूप से अच्छा अध्ययन कर रखा है। उनका कहना है कि वेद के मंत्र का एक सूक्त सब टेक्नालॉजी है। यह पुरुष सूक्त है। उन्होंने बताया कि हम भारत में अतंरिक्ष से किसी भी गांव में बिजली प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी कीमत प्रति यूनिट ५ पैसे बैठती है। इसका उन्होंने एक छोटा सा प्रारूप भी बनाकर तैयार किया था। हमने उस प्ररूप को उस समय की एन०डी०ए० सरकार के मंत्री के सामने रखवाया था। मगर वह सरकार ही चली गई। मैंने स्वंय वह प्रारूप देखा था। इन अध्ययनों का उपयोग गुप्तचर संस्थायें अपने संदेश को एकत्रित कर अपने देश को भेजने तथा दूसरी संस्थाओं की सूचनायें चुराने में प्रयोग करती हैं। यह एक प्रकार का अखाड़ा है। वह चाहते थे कि भारत सरकार की तरफ से उन्हें एक वैज्ञानिक के नाते प्रमाण पत्र मिल जाए जो शोध कार्य में सहायक होगा। अन्यथा वह भी वहां जासूसी के नाम पर पकड़ा जा सकता है। सरकार ही चली गई तो उन्होंने दूसरा प्रयोग शुरु किया। आज जो बिजली तैयार होती है उसमें विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र में एक रोटर घूमता है। उसी से बिजली बनती है। उन्होंने सोचा कि रोटर को स्थिर रखकर के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र को क्यों न बदला जाये? उन्होंने इस का प्रारूप तैयार कर दिया। एक ऋणात्मक और दूसरा घनात्मक ऐसे दो चुम्बक रखे। बीच में एक रोटर रख दिया। चुम्बक बदलते गए और प्रयोग सफल हो गया। अभी तक दुनिया में कहीं ऐसा नहीं हुआ था। जितना input डालते हो उसका तीन गुणा output आ रहा है। १२६ वाट से २ टयूब लाईट जलती है। जब इसे चालू कर देते हैं तो उसमे ६ टयूब बन जाती है। यह सब मैंने स्वयं देखा हैं। उन्होंने कहा हम ४ की जगह ८ टयूब कर देगें तथा उससे ६६० बोल्ट विद्युत की क्षमता प्राप्त होगी। ये सारी चीजें हमारे यहां हैं। ***महर्षि योगी के एक फ्रेंच शिष्य हमारे यहां आए। उन्होंने बताया कि जब हम संस्कृत के श्लोक बोलते हैं या भारतीय भाषा में भजन बोलते हैं, उस समय हमारे मस्तिष्क की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। आज कल तो मस्तिष्क के अन्दर चल रहे विचारों का चित्र लिया जाता है। जब हम लक्ष्मी सूक्त बोलते हैं, उस समय हमारे मस्तिष्क में लक्ष्मी यंत्र बन जाता है। हमें बताया गया वेद, गड़रियों के गीत है। उन्हें काहे को पढ़ना, छोड़ो इसे। आज बाहर के लोग इसे समझने लगे हैं। मंत्र में शक्ति है।*** अमेरिका के वामदेव शास्त्री ब्राह्मण बन गए हैं। उनका अमेरिकन नाम डेविड फ्रेले था। वामदेव शास्त्री वेदों को समझ गए, हम नहीं समझे। हमारे पास ज्ञान का भंडार है। हम निश्चित रूप से आगे बढ़ेगें। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपना इतिहास पढ़ें।

इतिहास का सबसे बड़ा विकृतिकरण

हम देखते हैं कि २०वीं शताब्दी एक परिवर्तन की शताब्दी है। अपने देश को स्वाधीनता मिलने के साथ ही विभाजन भी हुआ। कहते हैं कि असहयोग आन्दोलन के कारण देश को आजादी मिली। "दे दी आजादी बिना खड्ग बिना ढाल, साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल"। वास्तविकता क्या है? ऐटली जब इंग्लैंड के प्रधानमंत्री थे, उस समय ही भारत को आजादी मिली। १९५६ में ऐटली भारत दौरे पर आया था। वे उस समय कलकत्ता राजभवन में रूके। तब बंगाल के राज्यपाल बी० चक्रवर्ती थे। रात को बातें करते हुए ***चक्रवर्ती ने पूछा कि १९४२ का असहयोग आन्दोलन तो खत्म हो चुका था और द्वितीय विश्व युद्ध १९४५ में भी तुम्हारी विजय हो चुकी थी, ऐसी अच्छी स्थिति में तुम्हें भारत छोड़ने की क्या आवश्यकता पड़ी? ऐटली ने बताया इसका कारण असहयोग आन्दोलन नहीं था। इसका कारण थे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस।*** नेताजी सुभाषचन्द्र बोस अपनी सेना लेकर इंफाल तक पंहुच गए थे। आज भी वहां उनका एक स्मारक बना हुआ है। अमेरिका ने जापान के

हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम का प्रयोग कर दिया था। इसलिए नेता जी को वापिस लौटना पड़ा था। आज़ाद हिन्द फौज़ के कुछ लोग पकड़े गए और उन पर मुकदमा चलाया गया। जब मुकदमा चलाया गया तो वायु सेना में विद्रोह हो गया। यही नहीं, मुम्बई में भी विद्रोह हो गया। अंग्रेजों के कान खड़े हो गये। जिस सेना के बल पर हम राज करते हैं, वही हमारे विरुद्ध हो गई तो हम कैसे राज करेंगें? गुप–चुप तरीके से सेना के अन्दर आज़ाद हिन्द फौज के लोगों पर चलाए जा रहे मुकदमे के बारे में राय–शुमारी ली गई। ८० प्रतिशत लोगों का कहना था कि मुकदमा नहीं चलाया जाना चाहिए। यदि हम भी वहां होते तो वही करते जो इन लोगों ने किया। इस बात से अंग्रेजों ने विचार किया कि जब भी हमें हिन्दुस्थान छोड़ना पड़ेगा तो हम उस समय इसके दो टुकड़े हिन्दू इण्डिया और पाकिस्तान इण्डिया के रूप में कर देगें। अब यह समय ठीक है, और भारत को बांट दिया गया। तब बी०चक्रवर्ती ने पूछा कि देश की आजादी में असहयोग आन्दोलन का कितना हिस्सा है? ऐटली बोला,'मिनिमम अर्थात न्यूनतम।'

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

हम सबको बताया जाता है कि नेता जी ताईवान से जा रहे थे और विमान दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। यह सिद्ध हो चुका है कि वहां विमान दुर्घटना हुई ही नहीं थी। स्वयं ताईवान ने बताया हमारे यहां से कोई विमान गया ही नहीं था तो मृत्यु कहां से हो गई? नेता जी पहले ही रूस पहुंच गए थे। उस समय रूस ने अपना पाला बदल दिया था।

रूस में नेता जी को जेल में रखा गया था। १९४९ में विजय लक्ष्मी पण्डित और डा० राधाकृष्णन् उनसे मिलकर आए थे। जब यह बात एक समारोह में विजय लक्ष्मी पण्डित, प० नेहरू को बताने लगी तो नेहरू ने उसे रोका। १९५३ में नेताजी भारत भी आए थे। यहां की सारी परिस्थिति उन्होंने देखी। गुमनामी बाबा के रूप में वे उत्तर प्रदेश के नोएडा के पास रहते थे। परदे के पिछे से सदा बात करते थे। केवल उनका नौकर और डाक्टर ही उन से बात कर सकता था। वे इस प्रकार से बात करते थे जैसे प्रत्यक्ष देख रहे हों।१९८५ में जब उनकी मृत्यु हुई तो उनकी व्यक्तिगत डायरियां व अन्य सामान उपलब्ध हुआ। जब उन डायरियों पर लिखे हुए विषयों और उनके हस्ताक्षर की विशेषज्ञों द्वारा जांच की गई तो इस बात की पुष्टि हुई कि यह लेखन नेता जी का ही है। वे परदे के पीछे क्यों रहे? उस समय की सरकार नहीं चाहती थी कि वे सामने आए। हमेशा सरकार उनके पीछे पड़ी रहती थी । इस पर डा० अनिल ने एक पुस्तक लिखी है। एन०डी०ए० सरकार ने एक मुखर्जी आयोग बिठाया था। उसने नेता जी के विषय में पूरी रिपोर्ट तैयार कर रखी है। सरकार उसे निहित स्वार्थों के कारण सार्वजनिक नहीं कर रही है।

हम अपनी चीजों को अच्छी प्रकार से जाने, इसके लिए ये सारे प्रयत्न चल रहे हैं। ये अनेक क्षेत्रों में चल रहे हैं। विज्ञान के क्षेत्र में, अर्थशास्त्र एवं सामाजिक क्षेत्र में कैसी अवस्था है आदि–आदि। अभी दो दिन पहले ही centre of policy studies का कार्यक्रम हुआ। पहले एक केन्द्र चन्नई में था और एक अब दिल्ली में खोला गया है। उसका भी उद्घाटन हुआ। हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, और शैक्षणिक अवस्था कैसी थी, इन सबका अध्ययन हो रहा है। यह जो कुछ भी हो रहा है, सब ईश्वरीय योजना से हो रहा है। उत्थान–पतन चलता रहता है। कुछ राष्ट्र ऐसे हैं कि पैदा हुए और उन्नति के शिखर पर पहुंचे। उसके बाद उनका पतन हो गया और पुन: उठने का सामर्थ्य उनमें न रहा। जैसे एक चक्के को जोर से धक्का दिया और कुछ चक्र खाकर गिर गया और जोर से धक्का दिया तो ५ चक्रर खाकर गिर गया। यह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रारंभिक ऊर्जा कितनी लगी है? पहला धक्का दिया वह ५ चक्र खाकर गिर गया दूसरा धक्का दिया तो १० चक्र खा के गिर गया और यदि उसमें मोटर फिट कर दी तो वह चलता रहेगा। इस प्रकार ग्रीक तथा मिस्र की संस्कृति चली गई। लेकिन हम अभी भी हैं। क्योंकि हमारी प्रांरभिक उर्जा आध्यात्मिक है। वह कभी खत्म नहीं होती है। हमारे यहां सबसे पहले आध्यात्मिक उत्थान होता है, उसके बाद में सामाजिक और आर्थिक। १९४७ में हम न्यूनतम बिन्दु पर पंहुच गए थे और इतना विशाल देश विभाजित हो गया।

१९वीं शताब्दी का सांस्कृतिक पुनरुथान और विश्वगुरू भारत का पुन: उदय

१९वीं शताब्दी में जो उत्थान की प्रक्रिया शुरू हुई, वह स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि अरविन्द और भगिनी निवेदिता जैसे आध्यात्मिक महापुरुषों से हुई। १८५७ में स्वतंत्रता संग्राम भी हुआ। पंजाब में अपने सद्गुरु रामसिंह कूका ने यह आन्दोलन शुरू किया था। यही नहीं, देश में वासुदेव फड़के से लेकर अनेक क्रान्तिकारी हुए जिन्होंने अनेक जन–आन्दोलन शुरू किए। १९४७ में देश स्वतंत्र भी हुआ और अपनी ही कमजोरी के कारण देश के दो टुकड़े भी हो गए। १९४७ में महर्षि अरविन्द ने कहा था, 'देश का विभाजन हुआ है, यह गलत हुआ है यदि यह देश विभाजित रहेगा तो दुनिया में अपनी भूमिका नहीं निभा पाएगा। जिस पद्धति से भी हो देश का विभाजन खत्म होना चाहिये और वह दूर होकर रहेगा'। १८९४–९५ में डा० हेडगेकार ने गुरू भाईयों को पत्र लिखा था कि १८३६ में स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जन्म एक स्वर्ण युग का प्रारम्भ है। ऋषि अरविन्द ने वार्ता करते हुए बताया था कि युग सन्धि का काल १७५ वर्ष का होता है। एक युग बीत गया एक नया युग शुरू होता है। २०११ में भारत का भाग्य दुनिया में चमकना शुरू होगा। महंत सूर्यनाथ जी ने बताया कि ३०–४० वर्षों में हम देखेगें कि हम सारी दुनिया के पुरोधा हैं। हमारे राष्ट्रपति जी ने कहा ३० वर्षों में हम दुनिया में सर्वश्रेष्ठ हो जायेंगे। ऐसे जो त्रिकालदर्शी महापुरुष हुए हैं जैसे महर्षि अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द इन लोगों ने जो बात कही वह होगी ही लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने आप को पहचानें।

हम अपने को पहचाने, आत्म शक्ति का निश्चय वने।
पड़ी हुई जूठी शिकार को सिंह नहीं जाते हैं खाने।
एक हाथ में सृजन, दूसरे में प्रलय लिए चलते हैं,
सभी कीर्ति ज्वाला में जलते, हम अंधियारे में जलते हैं।
आंखों में वैभव के सपने,पग में तूफानों की गति हो
राष्ट्र सिन्धु का ज्वार न रुकता,
आए जिस-जिस में हिम्मत हो।

शोध संस्थान में भारत का भविष्य

• महन्त सूर्यनाथ

इस समय इतिहास लेखन की तीन शैलियां चल रही हैं। प्रथम यूरोपीय शैली, दूसरी प्रचारीय तथा तीसरी भारतीय शैली है। अंग्रेजों के भारत में आने के साथ ही यूरोपीय इतिहास लेखन की शैली हमारे यहां आई है। अंग्रेजों ने हमारे इतिहास को तोड़–मरोड़ कर पेश करने का कुप्रयास किया था और आज भी बहुत कुछ उसी प्रकार से चला आ रहा है। दूसरे, इतिहास लेखन में प्रचारभरी शैली है। जैसे–कहीं कोई घटना घटी, घटना सही भी है, ऐतिहासिक महत्व भी है परन्तु उस घटना के ऐतिहासिक विषय की अपेक्षा अपना प्रचार अधिक करना यह कम्युनिस्टों की इतिहास लेखन शैली है। ***तीसरी शैली भारतीय है। इसके अन्तर्गत जो घटना जैसे घटी, उस घटना की वस्तु स्थिति को तथ्यों एवं ऐतिहासिक मानिसकता के आधार पर प्रस्तुत करना इसका मूल उद्देश्य होता है। भारतीय शैली प्राचीन काल से ही श्रुत परम्परा से ऐतिहासिक सन्दर्भों को संजोए हुए है। परवर्ती काल में लिखित परम्परा ने इन पक्षों को लिपिबद्ध किया। इस शैली में समाज को प्रेरणा प्रदान करना महत्त्वपूर्ण माना जाता है।***

पाश्चात्य इतिहास लेखन की शैली से ग्रसित भारतीय इतिहासकारों को भारतीय शैली से परहेज है। वे इस शैली में इतिहास लिखना तो क्या उसे याद करना भी पाप समझते हैं। आज देश के इतिहास विषय के पाठ्यक्रम में उन बातों का समावेश किया गया है, जिनसे हमारे समाज का कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ इतिहासकार लिखते हैं कि भारत एक हजार साल तक गुलाम रहा, कुछ अन्य लिखते हैं कि भारत पांच सौ वर्षों तक गुलाम रहा। सच्चाई यह है कि भारत कभी भी गुलाम नहीं रहा। भारत पर विदेशियों के अनेक आक्रमण हुए, उन आक्रमणों का यहां के समाज ने बहादुरी के साथ सामना किया। झांसी की रानी ने अंग्रेजों को कहा,“ मैं तुम्हारी आज्ञा को स्वीकार नहीं करती।” महारानी ने युद्ध के मैदान में मरना स्वीकार किया मगर अंग्रेजों की गुलामी नहीं सही। शिवाजी महाराज ने अपना खोया हुआ राज्य तो प्राप्त किया ही साथ में अपनी सीमा को विस्तार भी दिया। हमारे हिमाचल प्रदेश के नूरपुर के रामसिंह पठानिया ने अंग्रेजों पर चढ़ाई कर दी और दुश्मनों की सेना के छक्के छुड़ाए, घुटने नहीं टेके और शहीद हो गए।

हम जानते हैं कि शून्य की खोज भारत ने की है। जबकि यूरोप ने यह प्रचार किया कि यह खोज हमारी है। यह भी सब जानते हैं कि उनकी भाषा में शून्य शब्द है ही नही।

१५ अगस्त, १९४७ को देश आज़ाद हुआ। चाहिए तो यह था कि १६ अगस्त, १९४७ को ही इतिहास संकलन समिति की स्थापना सरकारी तौर पर की जाती और इसके लिए एक अलग मन्त्रालय की स्थापना होती। दुर्भाग्य से यह कुछ नहीं हुआ जिस कारण से हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन के वास्तविक इतिहास को हम अपनी युवा पीढ़ी के सामने नहीं रख पाए। हमें पढ़ाया जाता रहा है कि यहां पर मुगल आए, उन्होंने हमारे ऊपर राज किया। फिर अंग्रेज आये व्यापार करते हुए, उन्होंने अपना शासन स्थापित किया। यहां के राजा आपस में लड़ते रहते थे। इन बातों को पढ़ने से अपने प्रति ही घृणा पैदा होती है। इन्हीं बातों को जब पाकिस्तान में पढ़ाया जाता है कि अंग्रेजों के भारत में आने से पूर्व इस्लाम का शासन था। अंग्रेजों ने हिन्दुओं के साथ मिलकर मुसलमानों के साथ अन्याय किया है। देश का विभाजन कर एक छोटा सा हिस्सा हमें दिया गया और अधिक हिस्सा हिन्दुओं को दिया है, हमारे साथ अन्याय हुआ है। इस बात को पढ़ने से पाकिस्तान का युवक यह प्रेरणा लेता है कि हमारे साथ धोखा हुआ है और हमें पुन: एक न एक दिन हिन्द को प्राप्त करना चाहिए।

यह पहल सरकार ने नहीं की तो भारतीय इतिहास संकलन समिति तथा इतिहास के शोध के लिए बने इस नवनिर्मित संस्थान के द्वारा इतिहास लेखन और संशोधन का काम पूरा होना है। इस शोध संस्थान में भारत का भविष्य है। यह संस्थान इस काम में सफल हो, ऐसी कामना करता हूँ।

हमारी हिन्दू संस्कृति अगाधि और गंभीर है, यह ज्योतिपुंज है जो अंधेर में भटके हुये लोगों को अपनी मंजिल तक पहुँचाती है। संसार को आज इस की आवश्यकता है। पश्चिमी राष्ट्रों के पास आज भले ही सांसारिक सुख के सभी साधन मौजूद हों पर सच्ची शान्ति प्रदान करने वाली ‘आत्म विद्या’ का वहाँ सर्वथा अभाव है। बिना आत्मज्ञान के सब विद्यायें सच्चा सुख व शान्ति प्राप्त कराने में असमर्थ हैं। यही हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषता है जिसने इस संस्कृति को जीवित रखा है। यूनान, मिस्र, रोम आदि देशों की सभ्यता को आज कोई नहीं जानता पर हमारी हिन्दू संस्कृति आज भी सर्वत्र अपना प्रकाश फैला रही है।

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

भारतीय इतिहास की गौरवशाली परम्परा

● सुरेश सोनी, माननीय सह-सरकार्यवाह रा०सं०संघ

भागवत पुराण में शुकदेव जी ने महर्षि व्यास से काल के स्वरूप के विषय में प्रश्न पूछा तो महर्षि व्यास ने बताया कि '*विषय का परिवर्तन ही काल का स्वरूप है। हमारे सामने कोई घटना घटती है, सुबह होती है, शाम होती है, छोटा आदमी बड़ा होता है, उसमें जो परिवर्तन होता है, उसी से हम समय को जान पाते हैं। समय और जगत एक साथ चलते हैं। समय और जगत के इस प्रवाह में जो प्रारम्भ का बिन्दु है, उसी से इतिहास की यात्रा शुरु हो जाती है। इसलिए भारत वर्ष में जब हम इतिहास पर विचार करते हैं तो हमारे यहां का इतिहास सृष्टि के प्रारम्भ से ही माना जाता है।* भूतकाल, वर्तमान और भविष्य काल, ये काल के एक ही अविभाज्य अंग है और इन्हें टुकड़ों में नही बांटा जा सकता । बीता हुआ समय सूक्ष्म रूप में वर्तमान में निहित रहता है और आने वाले काल को प्रभावित करता है। लोग जब प्रश्न करते हैं कि इतिहास तो गढ़े मुर्दो को उखाड़ने की बात है, इसकी क्या जरूरत है? इसकी जरूरत है। जिनका कोई इतिहास नहीं होता, उनका कोई भविष्य भी नहीं होता। इसलिए इतिहास बोध की प्रासंगिकता है और वह सदैव बनी रहती है।

भारतीय इतिहास का द्वन्द्व

हिन्दुस्थान में इतिहास बोध की जो समस्या खड़ी हुई है, वह एक दर्पण के उदाहरण से स्पष्ट समझी जा सकती है। दर्पण में व्यक्ति अपना चेहरा देखता है। एक, भारत की अपनी प्राचीन परम्परा है, प्राचीन ग्रन्थ हैं तथा महान संस्कृति है। भारत अपना एक चेहरा उसमें देखता है। दूसरा, ब्रिटिश शासन के अन्दर शिक्षा पद्धति बनी, पाठ्यक्रम बने जिसमें भारत के इतिहास को दूसरे ढ़ंग से विवेचित किया गया है। इसमें भारत अपना चेहरा देखता है। यह एक द्वन्द्व है और यही भारत की आज की बड़ी समस्या है। यूनेस्को ने एक पुस्तक प्रकाशित की है, (History of mankind) उस में आर्यों की व्याख्या जंगली और बर्बर लोगों के रूप में की गई है। वेद लिखते हैं कि आर्य यानि श्रेष्ठ, भद्र, सुसंस्कृत जन आदि। प्रश्न उठता है कि सही क्या है? हमारे यहां कहा गया है कि धर्म जीवन का प्राण है। धर्म से रहो, धर्म से खाओ और धर्म से जीओ। हमारे प्राचीन काल के मनीषियों से लेकर महर्षि अरविन्द तक सबने धर्म पर चलने की बात कही है। पाश्चात्य जगत कहता है धर्म यानि झगड़े की जड़, कूप–मंडूकता, धर्म यानि पिछड़ापन। हमारे देश के नेता भी हमें धर्मनिरपेक्ष बनाने में लगे हुए हैं।

भारत का गौरवशाली इतिहास

भारत में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह सदैव पिटते रहने का ही इतिहास पढ़ाया जाता है। ये तथाकथित इतिहासकार इसे सिकन्दर से शुरू करते हैं। सिकन्दर पर यहां तीन दिन तक परिसंवाद होने वाला है। यह जो विषय आया है, यह आना आवश्यक है। यह इतिहास के बिन्दु को एक नया मोड़ देगा। हमें पढ़ाया जाता है कि सिकन्दर यहां आया और हमें पीटा । दुर्भाग्य से हमने भी उसे आंख मूंदकर सत्य मान लिया।

सिकन्दर के विषय में तीन बातें हमेशा हमें बतायी गयी हैं। पहली, सिकन्दर से पुरु हारा था। दूसरी, वर्षा खूब हुई, पानी के कारण कीचड़ हो गया और पुरु की सेना में हाथियों ने अपने सैनिकों को कुचल कर मार डाला। इस कारण पुरु की हार हुई। तीसरी बात बताई जाती है कि जब पुरु को सिकन्दर के सामने पेश किया गया और सिकन्दर ने पुरु से कहा कि तेरे साथ कैसा व्यवहार किया जाए तो? पुरु ने कहा कि जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है। कहते हैं कि सिकन्दर इस बात से प्रभावित हो गया। उसने पुरु के साथ सन्धि कर ली और उसका राज्य वापिस कर दिया।

ग्रीक इतिहासकार वर्णन करते हैं कि बैक्ट्रिया के राजा को पराभूत करने के बाद सिकन्दर ने जो व्यवहार उसके साथ किया, वह बड़ा ही बर्बरता पूर्ण था। राजा के नाक, कान काट दिए गए। जनता को पूरी तरह कुचल दिया गया। न बच्चों पर दया की गई और न ही स्त्रियों को बक्शा गया। एर्रियन लिखता है कि पुरु की सेना ने पहले ही झटके में सिकन्दर की सेना को पराभूत कर दिया और पुरु की सेना में इतना उत्साह और जोश था कि यूनानी सेना के अंदर आतंक छा गया था। यदि हाथियों के कारण हार हुई होती तो चन्द्रगुप्त से सैल्युकस के हार जाने के बाद भी सैल्युकस उत्सुक न होता कि चन्द्रगुप्त से मुझे कोई हाथी मिल जाए। साथ में ग्रीक इतिहासकार लिखते हैं कि युद्ध में सिकन्दर का घोड़ा मारा गया। वह बुरी तरह घायल हो गया और उसे उसी अवस्था में युद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाना पड़ा।

आवश्यकता है कि भारत अपने वास्तविक इतिहास में अपना चेहरा देखें। तभी हमारे समक्ष एक गौरवशाली समाज का चित्र उभर कर सामने आएगा। इससे आने वाली पीढ़ी के अन्दर प्रेरणा जागेगी और भावी भारत निर्माण में हमारा वास्तविक इतिहास सहायक होगा। इसी बात को लेकर राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के वरिष्ठ प्रचारक बाबा साहेब आपटे ने इतिहास के छुपे हुए पृष्ठों को सामने लाने की प्रेरणा दी। उनके चले जाने के बाद बाबा साहेब आपटे स्मारक समिति बनी और इतिहास संकलन समिति का कार्य प्रारम्भ हुआ। हम अपेक्षा रखते हैं कि तर्कयुक्त ढंग से प्रमाणों सहित तथ्यों को सामने लाया जा सके, अतः इस दृष्टि से ही इस शोध संस्थान का निर्माण हुआ है। आज भारत की संस्कृति, इतिहास एवं अपने विश्वविख्यात पूर्वजों की उपलब्धियों को विश्व के सामने लाने की आवश्यकता है। भारत की संस्कृति पूरे विश्व में स्थापित थी, इसके प्रमाण आज सर्वत्र उपलब्ध हैं। पिछले दिनों अमेरिका मैक्सिको के पास शक् संवत् ८४५ में बना सूर्य मन्दिर मिला है। ११०० वर्ष पूर्व एक भारतीय व्यापारी जब वहां व्यापार करने के लिए पहुंचा तब उसने उस मन्दिर को बनवाया था। यह सब बात वहां एक शिला पर लिखी हुई है। इण्डोनेशिया में ६०० वर्ष पूर्व इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के उपरान्त भी वहां का समाज अपनी हिन्दू संस्कृति का सम्मान आज भी करता है। वहां का समाज आज भी कहता है कि हमने अपना मजहब बदला है, संस्कृति नहीं बदली। कुल मिलाकर वास्तविक इतिहास को सामने लाने की आवश्यकता है। शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर के

शेष भाग पृष्ठ ३७ पर

इतिहास का सत्य प्रतिपादन :राष्ट्र की प्रबल शक्ति

• केदारनाथ साहनी, मा० पूर्व राज्यपाल

मैं जब संघ के प्रथम वर्ष का शिक्षण प्राप्त करने के लिए सन् १९४४ में मेरठ गया था तो संघ के द्वितीय सरसंघचालक जिनकी जन्मशताब्दी हम मना रहे हैं वे उस वर्ग में तीन दिन रहे थे। मैं विज्ञान का विद्यार्थी था, परन्तु प्रारम्भ से ही मेरी रुचि इतिहास में थी। स्कूलों में उस समय भी यही पढ़ाया जाता था कि वेद गड़रियों के गीत हैं और आर्य मध्य एशिया से आये हैं। परन्तु जब ***परम पूजनीय श्रीगुरुजी के बौद्धिक वर्गों में इतिहास के प्रसंग सुनने को मिले तो मेरे जीवन का चिंतन ही बदल गया। उन्होंने बताया कि आज भारत पर अंग्रेजों का विदेशी राज्य है और हम गत १२०० वर्षों से विदेशी आक्रमणों के शिकार होते रहे हैं, परन्तु हमने कभी दासता स्वीकार नहीं की है और विदेशियों से सतत् संघर्ष किया है। हम इसलिए हारते रहे कि हमने अपने इतिहास को नहीं समझा।*** विदेशी शासकों ने हमें यह पढ़ाया कि हम तो पैदा हुये ही गुलाम होने के लिए हैं। यह भावना हममें कूट—कूट कर भर दी गई। हम इस देश के मालिक हैं। हमारी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर है। हमारे पूर्वज बाहर से यहां नहीं आये अपितु वे यहां से सारे विश्व भर में फैल गये। हम राम और कृष्ण की संतानें हैं। शिवाजी महाराज जिन्हें पहाड़ी चूहा कहा जाता था, ने अपने अद्‌भुत पराक्रम से मुगलों को परास्त कर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की थी। एक दिन उनका एक पत्र औरंगजेब के सेनापति मिरजा राजा जयसिंह के नाम पढ़कर संघ शिक्षा वर्ग के शिक्षार्थियों को सुनाया गया। उस पत्र ने हमारी आंखें खोल दी।

श्रीगुरुजी ने बताया कि देश को स्वतंत्र करने के लिए सतत् संघर्ष चल रहा है। आज भी लड़ाई चल रही है। अब उसके दो रूप है— एक क्रान्तिकारियों के रूप में संघर्ष चल रहा है। दूसरा राजनीतिक आन्दोलन भी देश को स्वतन्त्र करने के लिए चल रहा है। परन्तु हमारे राजनैतिक नेताओं का यह चिंतन ठीक नहीं है कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद सब ठीक हो जायेगा। यदि उनके चले जाने के बाद सब ठीक हो जायेगा तो वे यहां पर आये ही क्यों? हम गुलाम हुये ही क्यों? रोग कहीं और है। राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ ने इस जड़ को पहचाना है। वह इसका उपचार कर रहा है। उपचार करने का एक प्रकार यह भी है जो आप और हम यहां देख रहे हैं। इतिहास जिस ढ़ंग का पढ़ाया गया उससे अनेक भ्रान्तियां पैदा हुई हैं। इन सब को दूर करना आवश्यक है। श्रीगुरुजी के उन विचारों ने इतिहास के प्रति मेरे दृष्टिकोण को बदल दिया।

रूस की यात्रा सन् १९७२

सन् १९७२ में मैं रूस गया था। वहां एक पीटर ग्राड है जो बाद में लेलिनग्राड कर दिया गया। पीटर वहां एक प्रसिद्ध रूसी राजा हुये जिन्होंने पूरे रूस को एकताबद्ध किया था। जैसे हम यहां चन्द्रगुप्त मौर्य को याद करते हैं वैसे ही वहां पीटर को याद करते हैं। वहां सरकार ने एक बहुत बड़ा भव्य संग्रहालय बनाया हुआ है। उसमें पीटर का घोड़ा, वस्त्र, शस्त्र, कुर्सी, मेज,पलंग आदि अनेक वस्तुओं को रखा गया है। पीटर की कहानियां तथा उनके संबन्ध में अन्य जानकारियां पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से वहां के बच्चों को पढ़ाई जाती है ताकि वहां के समाज में पीटर के बारे में स्वाभिमान का भाव पैदा हो सके।

पीटरग्राड—हिटलर की हार का कारण

वैसा ही एक पीटरग्राड नामक स्थान समुद्र तट पर तैयार किया गया है। हिटलर की हार का कारण भी वह शहर बना था। हिटलर ने तीन वर्ष तक इस नगर की घेराबंदी बनाये रखी। तीन लाख से अधिक लोगों ने अपना जीवन गंवा दिया, परन्तु हार नहीं मानी। वहां २०—२० लोगों की कब्रें बनी हुई हैं। प्रत्येक वर्ष गर्मियों और सर्दियों के अवकाश में पूरे रूस के बच्चे वहां घूमने के लिए आते हैं। वहां दीवार पर एक बड़ा मार्मिक गीत लिखा हुआ है। द्विभाषिया लड़की ने जब मुझे बताया तो गीत सुनकर मेरी आंखों में आंसू बहने लगे। जो बच्चे हर वर्ष वहां जाते है, वह दृश्य देखते हैं। उस गीत को पढ़ते हैं। उनके तन में अपने देश पर बलिदान होने की भावना और गौरव पैदा होता है कि हमारे पूर्वजों ने हिटलर जैसे शासकों को परास्त कर दिया था।

१६००० देवियों का चित्तौड़ में सती होना

आज यदि मुम्बई या दिल्ली के कम्युनिस्टों से पूछा जाये कि अलाउद्दीन खिलजी से महारानी पद्‌मनी के कारण जो संघर्ष हुआ था उसके बारे में तुम्हारा क्या विचार है? तो वह सीधा सा उत्तर देंगे—"महारानी पद्‌मनी मूर्ख थी जिसके कारण १६००० देवियों को जलना पड़ा । उसे अलाउद्दीन खिलजी के साथ चले जाना चाहिए था।" उस से क्या फर्क पड़ता था? इस प्रकार का चिन्तन राष्ट्र के स्वाभिमान को गिराता है। इससे राष्ट्र की शक्ति क्षीण होती है। हम इतिहास में विषय का प्रतिपादन तथ्यों और प्रमाणों सहित करें क्योंकि इतिहास एक ऐसा शास्त्र है जो राष्ट्र को खड़ा कर सकता है। इतिहास का सत्य प्रतिपादन राष्ट्र को प्रबल शक्ति सम्पन्न बनाता है।

All Haves Belong to Almighty

• InderJit Kapur

When Vishishth Atithi Shri InderJit kapur was requested to speak in the inaugural session of "Madhav Bhawan," he began- "I want to be very brief. Sorry for speaking in English. I do not deserve any credit for the work done here. Sincere efforts have no substitute for anything. Money can come, but if sincere efforts are lacking money can do nothing. I want to see in the coming years Bharat as a leading country of the world."

The above sentences sum up the life-mission of Shri Inderjit kapur. He is a well-known industrialist and a philanthropist from Mumbai. He has supported many welfare organizations over the years through generous monetary contributions. As regards the Thakur Jagdev Chand Smriti Shodh Sansthan Neri, Hamirpur, he is not only the prominent but sole financier for the whole project, the total cost of construction of which amount to more than sixty five lakh of rupees.

Reference to his contributions makes Mr. Inderjit Kapur uneasy. With humility and simplicity he says "The almighty wants to support such good work and, he has chosen me to give money, because I have no other thing to give"

He believes in destiny. He says- "Events, situations, the people and the ideas just occur. If you are ready for it, you pick up. When I see something remarkably good, a flash of feeling appears. The work or the person touches my heart in such a manner that encourages me to do something for the cause.

As a young college student in 1945, I was moved by the ideology, philosophy, spirit of service and nationalism of RSS. I wanted to devote my life with them in the service of the nation, but my father prevailed on me and I chose to do business.

My grandfather was a very noble person. I accompanied him to Haridwar as a young lad very often, while he constructed water tanks, Dharmshalas and other projects for the poor and the needy. My mother too was a very pious lady and was always helpful to others.

Though I could not become an active worker of RSS, but the seeds of service sown in my youth remained with me."

Once Shri Indejit Kapur paid a visit to Jhandewal, the RSS office, in New Delhi to meet Thakur Ram Singh. During their mutual talk over a cup of tea Ram Singh told him that he wanted to meet him at his residence Mumbai, Shri Kapur immediately remarked- "For money you need not to go to Mumbai. Tell me your need and you will get here." He further added- "Ram Singh Ji, I tell you from the core of heart that all have belongs to the almighty and I am only His cashier."

Such are the noble and rare sentiments of Shri InderJit Kapur. Hence the structure of the complex of Thakur Jagdev Chand Samriti Shodh Sansthan Reasearch Centre for history, is a monument dedicated to Shri Inderjit Kapur's life-mission - "Whatever I have belongs to the Almighty and I am only his cashier."

भारत के इतिहास का विनाश व विकृतिकरण एवं उसका निराकरण

• ठाकुर रामसिंह

किसी भी देश के राष्ट्रनिर्माण एवं उज्ज्वल भविष्य के उदय के लिए उस देश के इतिहास का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहता है। विदेशी आक्रमक मुसलमान हों अथवा अंग्रेज़ या अन्य, वे इतिहास के इस महत्त्व को अच्छी प्रकार समझते थे। यथा इसके संबंध में एक कथन है "यदि आप किसी देश पर शासन करना चाहते हैं तो उसके इतिहास को नष्ट कर दो और इस प्रकार उस देश को दास बनाने का ५० प्रतिशत काम पूरा हो जाएगा"। परन्तु किसी भी जाति के अतीत को पूर्णत: नष्ट करना संभव नहीं है, हाँ उसको विकृत अवश्य किया जा सकता है।

मुसलमान इतिहास की उपरोक्त उक्ति के मर्म को अच्छी तरह समझते थे, इसलिए शत्रु पक्ष के इन मुसलमान इतिहासकारों ने अपने सुल्तानों के मार्गदर्शन में यहाँ के इतिहास के विपक्ष में प्रचार करना शुरू किया। इस्लाम के गाज़ी सुल्तान मुहमद गजनवी के साथ अलबेरूनी नामक मुस्लिम इतिहासकार सर्वप्रथम हिन्दुस्थान में आया और यहाँ का इतिहास लिखने के लिए वह यहाँ से पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री अपने साथ ले गया, परन्तु उसने यह भी कटाक्ष किया कि 'हिन्दुस्थान का अपना कोई पुराना इतिहास नहीं है तथा हिन्दुओं को इतिहास लेखन की कला नहीं आती थी।'

विकृतिकरण के विभिन्न प्रकार :

सत्य घटनाओं का दुर्लक्ष : एक हजार वर्ष चले हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष में हिन्दुओं के शौर्य की अनेक घटनाओं का जो मुसलमान शासकों के विपक्ष में जाती हैं, इन दरबारी मुसलमान इतिहासकारों ने दुर्लक्ष कर अपने आकाओं का गुणगान कर हिन्दू प्रतिरोध के इतिहास को विकृत किया। शत्रुपक्ष के इन इतिहासकारों के इस दृष्टिकोण को प्रमाणित करने के लिए कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं –

(१) ***मुस्लिम इतिहासकारों*** ने मुहम्मद बख्त्यार खिलजी की जिसने नालन्दा और विक्रमशिला के हिन्दू विश्वविद्यालयों को जलाकर राख कर दिया था, मुस्लिम गाज़ी और अजेय योद्धा के नाते बहुत प्रशंसा की है, परन्तु उसका अंत कैसे हुआ इसके बारे में वे सब चुप हैं। उसके अंत के संबंध में वास्तविकता यह है कि बिहार और बंगाल के हिन्दू राज्यों को जीतने के बाद उसके मन में असम के पूर्व के एकमात्र आखिरी हिन्दू राज्य को जीतकर इस्लाम का गाज़ी और योद्धा बनने की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई और उसने सन् १२१० में असम पर आक्रमण कर दिया। वहाँ का हिन्दू राजा पृथु था। ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर कामरूप जिले में भयंकर युद्ध हुआ और उसमें उसकी सारी सेना मारी गई और वह स्वयं भी मारा गया। उसकी कब्र उत्तर गुहाटी में बनी है।

(२) ***मीर जुमला :*** औरंगजेब के प्रसिद्ध सेनापति मीर जुमला ने सन् १६६२ में असम पर आक्रमण कर वहाँ के हिन्दू राज्य का अधिकांश भाग जीतकर सन् १६६३ में वहाँ के राजा से संधि कर दिल्ली वापस जाने की योजना बनाई परन्तु असम की जलवायु, अतिवृष्टि, मच्छरों के प्रकोप और असम के हिन्दू वीर सैनिकों के प्रहार से उसका शरीर जर्जरित हो गया। अत: वह दिल्ली पहुँचने के पूर्व ही असम में अल्लाह को प्यारा हो गया।

(३) ***काला पहाड़ :*** काला पहाड़ ने बंगाल और उत्कल के हिन्दुओं के अनेक मंदिरों को तोड़ डाला। उसके बाद एक बड़ी मुस्लिम सेना लेकर असम पर आक्रमण कर उसने वहाँ की अधिष्ठात्री देवी कामाख्या के मंदिर को भी तोड़ा। अन्य भी कई पूजास्थानों को तोड़–तोड़ कर अपवित्र कर दिया। यह विनाश करने के बाद वह बंगाल वापस जाना चाहता था, परन्तु असम के हिन्दू रणबांकुरों ने अपनी शौर्य परम्परा के अनुसार उस आततायी को युद्ध में मारकर उसकी भी कब्र कामरूप के प्रसिद्ध हाजो नाम के गांव के पास के केदार पहाड़ में बनाकर हिन्दू मन्दिरों के ध्वंस का बदला चुका लिया।

(४) ***औरंगजेब का सेनापति राजा रामसिंह*** : जब कोई भी मुस्लिम सेनापति असम के हिन्दू राज्य का विलय नहीं कर सका तो औरंगजेब ने मिर्जा राजा जय सिंह के सुपुत्र राजा रामसिंह को दिल्ली में अपने दरबार में बुलाकर उसे जनवरी १६६८ में ४ हज़ारी का मनसब, खिल्लत और पोशाक प्रदान की और एक लाख की सेना देकर आज्ञा दी कि जाओ और असम की भूमि पर से काफिरों के राज्य को समाप्त कर इस्लाम का राज्य वहाँ स्थापित करो। जीत कर आओगे तो तुम्हारा स्वागत होगा और हार कर आए तो दंडित होगें। औरंगजेब का मामा शाइस्ता खां शिवाजी से पुणे में अपनी तीन उंगलियां कटवाकर बंगाल के सूबेदार के नाते दण्ड भोग रहा था। राजा राम सिंह अपनी विशाल सेना के साथ बंगाल की राजधानी ढाका पहुँचा और वहाँ उसको मिला। वहाँ से चलकर उसने अपनी सेना के साथ मई १६६९ में असम में प्रवेश किया। सन् १६६९–७० दो वर्ष तक वह असम को जीतने के लिए साम,दाम, दण्ड, भेद, और अन्य उपायों का उपयोग करता रहा, परन्तु अन्तत: सन् १६७१ में असम के सेनापति लाचित बरफुकन की सेना राजा रामसिंह की सेना के साथ सरायघाट (गुवाहाटी) में टकराई। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। ब्रह्मपुत्र नदी के इस नौका युद्ध में रामसिंह की हार हुई। एक लाख से अधिक की सेना असम की ४०,००० हिन्दू सेना से पूर्णत: पराजित हुई। रामसिंह अपनी बची–खुची सेना के साथ भाग लिया। लाचित बरफुकन की सेना ने उसको असम की पश्चिम की सीमा से बाहर भगा दिया, परन्तु पराजय के बाद भी वह ५ वर्ष तक बंगाल में ही रहा और असम को विजय करने की योजनाएं बनाता रहा। अंत में औरंगजेब ने हताश होकर उसे सन् १६७६ में दिल्ली वापस बुला लिया।

(५) ***राजस्थान का इतिहास बताता है कि*** मेवाड़ के सिसोदियों और जोधपुर के राठौरों ने मिलकर जहांगीर (दिल्ली का

मुस्लिम सुल्तान) को युद्ध में १७ बार हराया था।

(६) ***मेवाड़*** के शूरवीर राणा राज सिंह ने औरंगजेब के मेवाड़ पर किए आक्रमण का उदयपुर नगर की सुरक्षा दीवार के बाहर प्रतिकार कर उसे पराजित किया था। हारने के बाद वह दिल्ली की ओर भागा। परन्तु राज सिंह ने अपनी शूरवीरता की राजपूती परम्परा के अनुसार उसका पीछा किया। ***एक हजार वर्षीय हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष में हिन्दू प्रतिरोध के शौर्य की उपरोक्त और अन्य कई घटनाओं का इतिहासकारों ने इतिहास में स्थान न देकर उनको छुपाने का जो कुप्रयास किया है, वह इतिहास का अक्षम्य विकृतिकरण है।***

उपर्युक्त घटनाओं का गहराई से अध्ययन करने पर यह प्रश्न पैदा होता है कि मुसलमान शासकों ने असम के हिन्दू राज्य को नष्ट करने के लिए बार–बार हारने के बाद भी आक्रमण क्यों जारी रखे? इसका मुख्य कारण था कि सैनिक शक्ति के द्वारा सारे विश्व का इस्लामीकरण करने की उन्होंने जो योजना बनाई थी वह इस प्रकार है:– इस्लाम का उदय अरब में छठी शताब्दी में हुआ और इस्लाम की सेनाओं ने ५० वर्ष की अल्प अवधि में सारे मध्यपूर्व को जीतकर उसके सारे देशों का पूर्णत: इस्लामीकरण कर डाला। इससे मुस्लिम जगत के खलीफा और उसके अनुयायियों का साहस बढ़ा और उन्होंने सैनिक शक्ति के द्वारा सारे विश्व को मुसलमान बनाने की योजना बनाई। इस इस्लामीकरण के अभियान की योजना के दो पहलू थे। पहला पहलू था मध्यपूर्व से यूरोप पहुंचना और पूर्व को मुड़कर चीन तक पहुंच कर प्रशान्त महासागर के तट पर पहुंचना। योजना का दूसरा पहलू था हिन्दुस्तान को विजय करते हुए ब्रह्म देश के रास्ते दक्षिण की ओर से प्रशांत महासागर के तटवर्ती देशों को जीतकर इस्लामीकरण की वैश्विक योजना को पूर्ण करना।

अत: मध्यपूर्व की विजय के बाद इस्लाम की सेनाएं पूर्वी अफ्रीका को जीतती हुई जिब्राल्टर, मालटा के रास्ते १०० वर्ष के अन्दर स्पेन पहुँच गई। वहाँ से पूर्व की ओर मुड़कर २२५ वर्ष में चीन पहुँच गई।

योजना के दूसरे पहलू को कार्यान्वित करने के लिए हिन्दुस्थान की पश्चिमी सीमा ताशकन्द, यारकंद और बलख–बुखारा से संघर्ष शुरू हुआ। यह हज़ार वर्षी युद्ध हिन्दू–मुस्लिम के बीच देश के गांव–गांव, नगर–नगर की गलियों में लड़ा गया। हिन्दू प्रतिरोध इतना भीषण था कि जहाँ इस्लाम २२५ वर्ष में चीन पहुँच गया वहां उसको दिल्ली में पहुँचने के लिए ५०० वर्ष लगे। बाद में संघर्ष और भी तीव्र हो गया और हिन्दुस्थान से आगे पूर्व की ओर इस्लाम का बढ़ना हिन्दू सैनिक शक्ति ने रोक दिया। हिन्दुस्थान के पूर्व के एकमात्र राज्य को विलय कर आगे बढने के लिए मुगल सुल्तानों ने १७ बार आक्रमण किए, परन्तु असम के हिन्दू वीरों ने असम में इस्लाम के कदम जमने नहीं दिए और उसके आगे प्रशांत महासागर तक पहुँचकर इस्लामीकरण की वैश्विक योजना को पूर्णत: विफल कर दिया। इस प्रकार विश्व की मानवता पर आए इस्लाम के संकट का निराकरण हिन्दू क्षात्र तेज के अतुलनीय शौर्य के द्वारा संभव हो सका। इसके लिए सारा विश्व भारत का ऋणी है। यह विश्व के इतिहास की अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है, परन्तु उसे शत्रुपक्ष के इतिहासकारों और उनके अनुगामी भारतीय साम्यवादी और धर्मनिरपेक्षतावादी इतिहासकारों ने दुर्लक्ष कर अनदेखा कर दिया है क्योंकि इसका सारा श्रेय हिन्दू प्रतिरोध को जाता है। इस प्रकार की सत्य घटनाओं को छुपाना इतिहास का अक्षम्य विकृतिकरण है।

उपरोक्त हिन्दू शौर्य की सत्य घटनाओं और इसी प्रकार की हजार वर्ष के प्रतिरोध के पराक्रम की घटनाओं को उपरोक्त तथाकथित इतिहासकारों ने अनदेखा कर दिया है, परन्तु इस्लाम के मौलवियों, मौलानाओं और कवियों ने इस सत्य को स्वीकार किया है कि उनकी इस्लामीकरण की वैश्विक योजना हिन्दुओं के प्रबल और अप्रत्याशित प्रतिरोध के कारण असफल हुई। यथा उर्दू का कवि मौलाना हाली अपनी कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में इस सत्य को स्वीकार करता है :

"वह दीने हिज़ाजी का बेबाक बेड़ा।
निशान जिसका अक्से में पहुँचा।।
मुकाबिल हुआ जिसके न कोई खतरा।
न अम्मान में अटका न कुटिहा में ठिठका।।
किया पै सफर जिसने सातों समन्दर।
डूबा वह गंगा के दहाने में आकर।।"

अर्थात् "इस्लाम का वह निर्भीक नौसैनिक बेड़ा, जिसका ध्वज दुनिया के प्रत्येक भाग में फहरा और जिसके सामने कोई भी संकट नहीं आ सका, जिसको न अम्मान में रोका जा सका और न ही कुटिहा में, जिसने सातों सागरों को अपने अधीन कर लिया। वह अन्ततोगत्वा गंगा के मुहाने आकर गरक हो गया।"

विकृतिकरण ही नहीं विनाश भी

हिन्दुओं का पूर्णत: इस्लामीकरण करने के लिए उनके धर्म, संस्कृति, सम्मान, मानबिंदुओं, पुण्यस्थानों, मंदिरों, वेदशालाओं, विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, हिन्दू राजाओं के महलों, दुर्गों आदि को विदेशी मुस्लिम शासकों ने नष्ट करने के लिए कोई कसर उठा न रखी। इस्लाम की इस ध्वंसात्मक लीला के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :–

(१) ***नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविख्यात विद्यापीठ का विनाश*** : मुहम्मद बख्त्यार खिलजी ने नालंदा के विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय को, जो ७ मील के घेरे में था और जहाँ १७,००० विद्यार्थी और ५००० आचार्य थे, नष्ट कर दिया। उसके विशाल पुस्तकालय को, जिसमें ज्ञान–विज्ञान के लाखों ग्रंथ थे, आग लगा दी। वह ६ मास तक जलता रहा। बिहार के भागलपुर नगर के निकट गंगा के तट पर स्थित विक्रमशिला विद्यापीठ को भी उसी आततायी ने जलाकर राख कर डाला।

(२) ***उज्जैन का महाकालेश्वर मंदिर :*** इस मंदिर के परिसर में ज्ञान–विज्ञान के, संस्कृत के ग्रन्थों का एक प्राचीन पुस्तकालय था।

अलाउद्दीन ने उसमें आग लगा दी। वह भी ६ मास तक जलता रहा।

(३) ***शीतकाल में औरंगजेब और अन्य मुसलमान शासकों के हमामों को गर्म करने के लिए लकड़ी के स्थान पर संस्कृत के ग्रंथ जलाए जाते थे।*** मुसलमानों के राज्यकाल तक चलने वाली विनाश की इस लीला में लाखों ग्रंथ अग्नि की भेंट हो गए। अत: इस कारण भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण अध्याय लुप्त हैं। इससे भारत के इतिहास के पुनर्लेखन में अनेक कठिनाइयाँ पैदा हो गई हैं।

(४) ***ऐतिहासिक सामग्री, दस्तावेजों, ग्रन्थों, अस्त्र—शस्त्रों, पुरातात्त्विक वस्तुओं की लूट*** : मुस्लिम शासकों और इतिहासकारों ने भारत के ज्ञान—विज्ञान और इतिहास सम्बन्धी सामग्री को भी जी भरकर लूटा। इस प्रकार हमारे बहुमूल्य और अनमोल ग्रंथ खलीफा की राजधानी बगदाद और कई अन्य मुस्लिम देशों में पहुँच गए।

(५) ***तक्षशिला का विश्वविद्यालय :*** यह विश्वविद्यालय रसायन विज्ञान और आयुर्वेद की काय चिकित्सा का वैश्विक केन्द्र था। महाराजा चन्द्रगुप्त यहाँ विद्यार्थी और चाणक्य प्राध्यापक थे। यह अपने भव्य भवनों से सुसज्जित १८ मील के क्षेत्र में स्थित था। हूणों ने इसे ईसा की पांचवीं शताब्दी में भूमिसात् कर दिया। आज यह स्थान पश्चिमी पाकिस्तान में है।

विदेशी शासक अंग्रेज और इतिहास

इस्लाम यहां आया इस देश भारत का इस्लामीकरण करने के लिए तो बाद में अंग्रेज (ईसाई) आए ईसाईकरण के लिए। समाज के उत्थानार्थ इतिहास के महत्व को अंग्रेज भलीभांति समझते थे। अत: उन्होंने भारत के इतिहास को नष्ट करने की मुसलमानों की ध्वंसात्मक नीति का सूक्ष्मता से अध्ययन कर यह मालूम कर लिया कि मुस्लिम शासक हिन्दुओं के भूतकाल को पूर्णत: समाप्त करने में असफल हुए हैं। अत: उन्होंने इतिहास को नष्ट करने की नीति का परित्याग कर दिया, परन्तु वे मुसलमानों से अधिक चतुर थे। इसलिए उन्होंने अपने राज्यकाल में भारत के इतिहास को जिस प्रकार बिगाड़ा है, उसका उदाहरण विश्व में मिलना कठिन है।

हिन्दू शक्ति का उदय

भक्ति आन्दोलन से इस देश में एक महान राष्ट्रीय हिन्दू शक्ति का उदय हुआ और इसने मुगलों के साम्राज्य को उखाड़ फेंका था। इसी शक्ति के दूसरे शत्रु अंग्रेजों से ४ युद्ध हुए और पांचवाँ युद्ध सन् १८५७ का स्वतंत्रता संग्राम था। इसमें, अंग्रेज़ हार चुके थे। अंग्रेज़ वायसराय लार्ड हार्डिंग ने भागने के लिए अपना घोड़ा तैयार कर लिया था, परन्तु अपने ही देश के कुछ लोगों के देशद्रोह के कारण उनका हाथ से जाता हुआ राज्य बच गया।

इतिहास के विकृतिकरण की त्रिसूत्री योजना

उपरोक्त पांचों युद्धों का गहराई से अध्ययन करने के बाद अंग्रेज इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यहाँ का राष्ट्रीय समाज वास्तव में हिन्दू है और इसी कारण ये युद्ध हुए। भविष्य में भी १८५७ जैसे संग्राम की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। अत: इन सभी बातों का विचार कर अंग्रेजों ने अपने भारत के साम्राज्य को सुदृढ़ और स्थाई बनाने के लिए इस देश के इतिहास को विकृत करने के लिए त्रिसूत्री योजना बनाई। इस योजना की विस्तृत जानकारी वैश्विक मस्तिष्क वाले हिन्दू क्रांतिकारी लाला हरदयाल की अंग्रेजी पुस्तिका “My Divine Madness” में मिलती है। इसके तीन सूत्र इस प्रकार हैं :—

(१) पहला सूत्र : De-Hindulisation of the Hindus;

(२) दूसरा सूत्र : De-nationalisation of the Hindus and

(३) तीसरा सूत्र: De-Socialisation of the Hindus

अर्थात् हिन्दुओं का अहिन्दुकरण, अराष्ट्रीयकरण और असमाजीकरण।

हिन्दू समाज का असमाजीकरण

हिन्दू समाज की एकात्मता को नष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने इसमें ब्राह्मण—अब्राह्मण, छूत—अछूत, उत्तरवासी—दक्षिणवासी, आर्य—द्रविड़, ट्रायबल—नॉन ट्रायबल, राजपूत—जाट, सवर्ण—असवर्ण, आदि अनेक भेद उत्पन्न किए, जिसका हमारे इतिहास में कहीं भी उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं, अंग्रेजों ने हमारे समाज में भेद निर्माण कर इसकी वैज्ञानिक वर्ण—व्यवस्था को भंग करने के लिए वर्णों के आधार पर संस्थाएं निर्माण करने के लिए प्रोत्साहन दिया—यथा राजपूत महासभा, वैश्य महासभा इत्यादि, इत्यादि।

भारत की नैसर्गिक राष्ट्रीयता का विकृतिकरण

हिन्दू समाज के उपरोक्त विघटन से अंग्रेजों का समाधान नहीं हुआ और उन्होंने इस देश की राष्ट्रीयता को छिन्न—विच्छिन्न करने के प्रयास शुरू किए। आर्यों की आदि जन्मभूमि के बारे में विवाद यूरोपियन मानसिकता में १८ वीं सदी के अन्त में एवं १९ वीं सदी के प्रारम्भ में उत्पन्न हुआ। उनके मूल निवास के बारे में पाश्चात्य इतिहासकारों ने कई प्रकार के सिद्धांतों का आविष्कार कर डाला।

रॉयल एशियाटिक सोसायटी

एशिया के और विशेषत: भारत के इतिहास के लेखन के लिए लंदन में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की गई। १८अप्रैल १८६५ को इसके तत्त्वावधान में अंग्रेज़ सरकार के मार्गदर्शन में अंग्रेज़ इतिहासकारों की सोसायटी के लंदन स्थित कार्यालय में सोसायटी के अध्यक्ष स्ट्रांगफील्ड की अध्यक्षता में आर्यों के मूल अभिजन के बारे में आविष्कृत मध्य एशियाई सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। उस पर चर्चा करने के बाद सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर दिया कि आर्यों का आदि स्थान मध्य एशिया था। कालक्रम में वहां से उनकी एक शाखा यूरोप चली गई और उसने वहां के आदिवासियों को युद्ध में हराकर यूरोप पर अधिकार कर लिया।

आर्यों की दूसरी शाखा एशिया से चल कर ईराक, ईरान अर्थात मध्यपूर्व में जा पहुंची। पहली शाखा के ही समान उन्होंने मध्य पूर्व पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। तीसरी शाखा ने दुनिया की छत पामीर के पहाड़ को पार कर हिन्दुस्थान के पंजाब प्रांत पर आक्रमण कर दिया। वहाँ के द्रविड़ उनके सामने खड़े नहीं हो सके और आर्यों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। वहाँ से भारत का

आर्यकरण शुरू होकर पूर्व की सीमा तक पहुँच गया। यूरोप के इतिहासकार मैक्समूलर के मत के अनुसार यह घटना ईसा पूर्व २५०० और ईसा पूर्व १५०० के मध्य अर्थात् ३५०० वर्ष पुरानी है।

इतिहास के इस विकृतिकरण के अनुसार अंग्रेजों ने यह सिद्ध किया कि हिन्दुओं के पूर्वज आर्य लोग मध्य एशिया में रहते थे। वे भारत में आक्रमक के नाते आए। अत: यह देश उनका नहीं है। ये विदेशी हैं। उनके बाद मुसलमान आए। उनका भी यह देश नहीं है। और अंत में ईसाई आए। उनका भी यह देश नहीं है। तीनों विदेशी हैं।

इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी प्रचार किया कि जब हम यहाँ पर आए तो यहाँ न तो कोई सभ्यता थी और न कोई संस्कृति और न ही कोई राष्ट्रीय भाषा थी। हमने इस देश को राजनीतिक एकता प्रदान की। यहां पर तीन भगिनी संप्रदाय हैं –Three Sister Communities हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई ये तीनों मिलकर नया राष्ट्र बनाएं। जब ये इस का निर्माण कर लेंगे तो हम यहाँ से चले जाएंगे।

इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना

इतिहास के इस अद्भुत विकृतिकरण को कार्यान्वित करने के लिए अंग्रेजों ने सन् १८८५ को इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की। इसका नारा था 'हिन्दू–मुस्लिम और ईसाई आपस में हैं भाई–भाई' तीन भगिनी संप्रदाय (Three Sister Communities) 'हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई। आर्यों के मूल अभिजन के बारे में अंग्रेजों द्वारा आविष्कृत मध्य एशियायी सिद्धांत यहां की सनातन, पुरातन राष्ट्रीयता का, जिसका श्रीगणेश विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में होता है, दुर्लक्ष कर यहां के राष्ट्रीय हिन्दू समाज को एक विदेशी संप्रदाय के रूप में विदेशी मुस्लिम और ईसाई आक्रामकों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। इतना ही नहीं अंग्रेजों ने हिन्दू, मुस्लिम और ईसाइयों को Three Sister Communities के नाम से संबोधन करना शुरू कर दिया। उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया कि ये तीनों संप्रदाय मिलकर एक नए राष्ट्र का निर्माण करें, जिसे । A Nation in the making अर्थात निर्माणाधीन राष्ट्र – A Nation in the process of formation कहा गया।

Indian National Congress के द्वारा नए राष्ट्र के निर्माण करने का यह प्रयोग आरम्भ हुआ। नया राष्ट्र तो नहीं बना अपितु इस निर्माणाधीन राष्ट्रीयता के कारण देश का १५ अगस्त १९४७ को हिन्दू और मुस्लिम, इस आधार पर विभाजन हो गया। देश विभाजित होकर जब १९४७ में स्वतंत्र हुआ तो अंग्रेजों द्वारा स्थापित, पोषित कांग्रेस सत्ता में आई और उसने असफल होने पर भी इस प्रयोग को जारी रखा। संविधान भी इसी निर्माणाधीन राष्ट्रीयता के अनुसार बना है। इसके कारण आज स्वतंत्रता के ६१ वर्ष पूर्ण होने के बाद भी देश राष्ट्रीय दृष्टि से व्यवस्थित नहीं है। आज भी देश और समाज की भीतरी–बाहरी समस्याओं का एकमात्र कारण यह इतिहास का विकृतिकरण ही है। अंग्रेजों ने भारत के इतिहास के साथ एक महान अन्याय ही नहीं अपितु महापाप किया है। जिसे भारत कभी भुला नहीं सकेगा।

इससे आगे और भी बहुत सी बातें इतिहास के तोड़ने और मरोड़ने के बारे में है। उनमें से कुछ इस प्रकार है:–

(१) ***भारत एक देश नहीं है अपितु उपमहाद्वीप है*** : अंग्रेजों ने देश की अखण्डता को नष्ट करने के लिए यह प्रचार किया कि भारत कभी भी एक देश नहीं रहा। यह तो उपमहाद्वीप है। इसी कारण इस देश में अनेक जातियां और अनेक राष्ट्र हैं।

(२) ***यहां की जलवायु*** गर्म है और इस कारण यहां के लोग सुस्त और आलसी होते हैं। इतना ही नहीं इस कारण पराक्रम शून्य भी हैं। इसलिए यहां शीत प्रधान देशों से आक्रमक आते रहे और अपने राज्य स्थापित कर यहां बसते रहे। परन्तु कालक्रम में वे भी सुस्त हो गए। उनको सक्रिय करने के लिए फिर बाहर से आक्रमण हुए। यहां आदिकाल से यही क्रम चलता रहा।

(३) ***हिन्दू इतिहास लेखन कला से अनभिज्ञ*** : अंग्रेजों ने यह भी प्रचार किया कि भारत का अपना कोई पुराना इतिहास नहीं है। हिन्दू इतिहास लेखन की कला नहीं जानते थे। उनका जो इतिहास है, कल्पनाओं के ऊपर आधारित है।

(४) ***सन् १८५७ तक*** हिन्दुस्थान के लोगों को दुनिया हिन्दू के नाम से जानती थी और हिन्दू का सम्मान सारे विश्व भर में था, परन्तु अंग्रेजों ने इतिहास को दूषित कर हिन्दू को एक संप्रदाय बना दिया। इतना ही नहीं इससे भी अधिक विकृतिकरण का परिणाम यह हुआ कि हमारा सारा साहित्य, इतिहास और महापुरुष सांप्रदायिक हो गए। हमारी वर्तमान की सभी समस्याओं का यही एकमेव कारण है।

भारत के इतिहास के लेखनार्थ नए कालक्रम का आविष्कार :

वर्तमान में विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह विलियम जोन्स द्वारा आविष्कृत कालक्रम के आधार पर लिखा गया है। यह कालक्रम है ईसा के जन्म से संबंधित ईसाई अवैज्ञानिक कालगणना के अनुसार निर्धारित कालक्रम। विलियम जोन्स ने संस्कृत भाषा अपने सचिव पंडित राधाकांत से सीखी और भारत के इतिहास को समझने के लिए राधाकांत के सहयोग से भागवतपुराण पढ़ा और पुराणों में उल्लिखित युगों की भारतीय कालगणना के कालक्रम को स्वीकार किया, परन्तु बाद में जाने या अनजाने में उसने भारतीय कालक्रम को दुर्लक्ष कर घोषणा की कि भारत की केवल सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने की ईसापूर्व ३२७ की ही तिथि एक मात्र सत्य तिथि है और इसको उसने भारत के इतिहास के लेखन के लिए सन् १७८४ में आधारभूत तिथि घोषित कर दिया। तब से यह ईसा के पूर्व और ईसा के पश्चात् का विदेशी कालक्रम चला आया है।

स्वतंत्र भारत और इतिहास :

शासन देशी हो या विदेशी वह अपने स्वार्थ के अनुसार इतिहास को दिशा देता है। १५ अगस्त १९४७ को हमारा देश हिन्दुस्थान विभाजित होकर स्वतंत्र हुआ। राजसत्ता अंग्रेजों द्वारा स्थापित, पालित और पोषित कांग्रेस के हाथ आई और जवाहरलाल नेहरू देश के पहले प्रधानमंत्री बने। विचारों की दृष्टि से वे मार्क्सवादी

थे। उन्होंने हिन्दुस्थान को समाजवादी अवधारणा के अनुसार कल्याणकारी राज्य घोषित किया।

धर्मनिरपेक्षता पर आधारित नई शिक्षा नीति :

साम्यवादी अवधारणा के अनुसार नई शिक्षा नीति की योजना पंडित नेहरू के मार्गदर्शन में बनी। इसके लिए दो संस्थाओं का निर्माण किया गया—एन.सी.ई.आर.टी. और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय।

(१) NCERT का दायित्व था देश के शिक्षा विभाग की पाठ्यपुस्तकों का लेखन व प्रकाशन। इस कार्य के लिए एन.सी.ई.आर.टी. में साम्यवादी दृष्टिकोण के विद्वानों और इतिहासकारों को नियुक्त किया गया। इतिहास और अन्य पाठ्यपुस्तकों के लेखनार्थ एन.सी.ई.आर.टी. ने एक परिपत्र निकाला – Guide Lines for Writing Text Books.

लेखन के मार्गदर्शक बिन्दु

(१) इस देश की संस्कृति मिश्रित (Composite Culture) है। इसके अनुसार इतिहास और अन्य शैक्षिक पुस्तकों का लेखन होना चाहिए।

(२) शिवाजी का अधिक गुणगान नहीं होना चाहिए।

(३) औरंगजेब को अत्याचारी के नाते नहीं दर्शाना चाहिए, अपितु उसने हिन्दुओं के लिए मंदिर बनाकर दिए। उसी प्रकार के अन्य धर्मनिरपेक्षतावादी बिन्दु परिपत्र में थे। इन बिन्दुओं के प्रकाश में पाठ्यपुस्तकों का लेखन व प्रकाशन शुरू हुआ।

इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए देश के सभी विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षा संस्थाओं में साम्यवादी और धर्मनिरपेक्षतावादी इतिहासकार और अन्य विद्वानों की नियुक्तियां की गयी।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय :

इस विश्वविद्यालय की स्थापना इस नई शिक्षा नीति को कार्यान्वित करने के लिए मार्गदर्शक विश्वविद्यालय के नाते की गई थी। इसके भी सभी विभागों में उपरोक्त दृष्टिकोण के प्राध्यापक नियुक्त किए गए।

इण्डियन कांउसिल ऑफ हिस्टॉरिकिल रिसर्च और शिक्षा की अनुसंधानवादी संस्थाओं में साम्यवादी इतिहासकारों की संख्या में अनपेक्षित वृद्धि हो गई।

इस साम्यवाद पर आधारित धर्मनिरपेक्षतावादी नई शिक्षा नीति की योजना में यह भी प्रस्ताव था कि Army Commissioned Officers का प्रशिक्षण भी देहरादून के बजाए नेहरू विश्वविद्यालय में होना चाहिए ताकि सेना को भी धर्मनिरपेक्ष बनाया जा सके। अंग्रेजों द्वारा राजसत्ता के प्रदान के साथ अंग्रेजों द्वारा किए गए विकृतिकरण को दूर कर कांग्रेस भारत के इतिहास का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्लेखन करती, परन्तु यह तो उसने किया नहीं और अंग्रेजों द्वारा किए गए विकृतिकरण को मान्यता दे दी। उसके अनुसार जितना अपने देश के इतिहास का विकृतिकरण अंग्रेजों के राज्य में हुआ था उससे भी कई गुना अपने स्वतंत्रता के काल में हुआ है और हो रहा है। एन.सी.ई.आर.टी. के मार्गदर्शन में नई शिक्षा नीति की इतिहास की पुस्तकों में विकृतिकरण के मुख्य—मुख्य उदाहरण इस प्रकार हैं।

१. राणाप्रताप, गुरुगोविन्दसिंह और शिवाजी रास्ता भूले देशभक्त थे।

२. अकबर देश को एकताबद्ध कर रहा था, परन्तु राणाप्रताप ने उसे सहयोग नहीं दिया।

३. सिखों के गुरु, जिन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना शीश दिया, डाकू थे।

४. आर्य गाय का मांस खाते थे।

५. आर्य लोग विदेशी थे। वे आक्रमक के नाते भारत में आए। यह उनका देश नहीं है।

६. भारत एक उपमहाद्वीप है। इसमें कई संस्कृतियाँ और अनेक राष्ट्र हैं। इस नई शिक्षा नीति के अनुसार अपने देश के इतिहास, साहित्य और महापुरुषों को धर्मनिरपेक्षता के सांचे में ढालने के प्रयत्न समाजवादी नेता जवाहरलाल नेहरू के मार्गदर्शन में शुरू हुए। यह अभियान गतिशील हो रहा था, परन्तु इसके जनक और प्रेरणास्रोत श्री जवाहरलाल नेहरू जी का सन् १९६४ में देहावसान हो गया। उनके बाद कांग्रेस धीरे—धीरे विघटित होने लगी और उसके हाथ से सत्ता निकल जाने के कारण इस अभियान की गति में अवरोध उत्पन्न हो गया, परन्तु विकृतिकरण किसी न किसी रूप में चल ही रहा है।

आरोपों का निराकरण

पाश्चात्य ईसाइयों, मुस्लिम दरबारियों और उनके अनुयायी भारतीय साम्यवादियों और धर्मनिरपेक्ष इतिहासकारों का यह आरोप कि भारत का अपना कोई इतिहास नहीं है और हिन्दुओं को इतिहास लेखन की कला नहीं आती थी, पूर्णत: मिथ्या है और उनके भारत के इतिहास के घोर अज्ञान पर आधारित है।

इतिहास शास्त्र के प्रथम संस्थापक ब्रह्मा जी :

देवताओं के आध्यात्मिक और शैक्षिक साम्राज्य के विश्व के प्रथम सम्राट ब्रह्मा जी ने विश्व में सर्वप्रथम इतिहास शास्त्र की स्थापना कर इतिहास के दो ग्रंथ ***'ब्रह्मसंहिता'*** और ***'महापुराण'*** लिखे और इतिहास के प्रचार—प्रसार और लिखने का दायित्व अपने उत्तराधिकारियों को दिया। यह घटना भारतीय इतिहास के प्रथम कालखंड देवयुग की है। ***उस समय यह पृथ्वी एक द्वीपा थी***। अत: जब इतिहास शास्त्र की स्थापना ही सर्वप्रथम भारत में हुई तो यह कहना कि भारत का अपना कोई इतिहास नहीं है और हिन्दुओं को इतिहास लिखने की शैली नहीं आती थी, पूर्णत: मिथ्या और स्वार्थप्रेरित सिद्ध हो जाता है।

इतिहास के प्रचार —प्रसार की स्थायी व्यवस्था

गुरुकुलों की स्थापना:

वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के प्रथम मनु, स्वांभुव मनु ने ज्ञान—विज्ञान के लिए गुरुकुलों की भारत में स्थापना की। इतिहास के

प्रचार के लिए उसने ब्रह्मा के तत्कालीन उत्तराधिकारी से इतिहास की चार लाख श्लोंकों की पुस्तक प्राप्त कर उसकी प्रतियां बनवाकर गुरुकुलों के प्राचार्यों को दी और इतिहास लिखने और उसके प्रचार का दायित्व इन गुरुकुलों के आचार्यों को दिया।

इतिहास के लेखन और प्रचार की यह पद्धति काफी समय तो चलती रही। आगे चलकर विश्व के प्रथम भारतीय चक्रवर्ती सम्राट महाराजा पृथु ने जिसके कारण इस ग्रह को पृथ्वी का नाम मिला है, ज्ञान—विज्ञान और इतिहास के प्रचार के लिए अपनी राजधानी माहिष्मती में विद्वानों की बड़ी सभा का आयोजन किया। गुरुकुलों के आचार्यों द्वारा लिखित इतिहास के प्रचार—प्रसार में उनका सबसे बड़ा योगदान था। इतिहास के प्रचार के लिए स्थायी व्यवस्था का निर्माण किया । इसके लिए उन्होंने इतिहास के ज्ञान के प्रचार और प्रशिक्षण का पूर्ण दायित्व 'मागध' और 'सूत' नामक दो जातियों को दिया। वर्ष के ८ मास घर—घर में जाकर इतिहास के प्रचार का कार्य उनको सौंपा गया। वर्ष के शेष ४ मास वे अपने परिवारों की देखभाल करते थे। जीवन—निर्वाह के लिए महाराजा पृथु ने मागध को मगध और सूत को तेलंगाना जागीर में दे दिए। इतिहास के लेखन और संशोधन का कार्य इतिहासकारों पर छोड़ दिया। अत: महाराजा इक्ष्वाकु से महाभारत तक ऐसे विश्वविख्यात ३० इतिहासकार हुए हैं। वेद व्यास, गर्ग और जैमिनी के नाम भी इन ३० में से हैं।

आगे चलकर इतिहास के प्रचार—प्रचार की इस स्थायी योजना में कथावाचक, वृत्तलेखक, भाट, चारण, ढाडी और मिरासी हुए, जो आज भी विद्यमान हैं।

<u>भारतीय चिंतन शास्त्र में इतिहास का महत्व:</u>

१. महाभारतकार वेदव्यास ने इतिहास को पंचमवेद कहा है— ***'इतिहासपुराणं पंचमो वेद:'***

२. यह भी कहा गया है कि वेद की व्याख्या इतिहास—पुरुष से करनी चाहिए।

३. प्राचीन भारत में विद्वता का लक्षण इतिहास के ज्ञान पर आधारित था।

४. संपूर्ण भागवत को सुनाने के पश्चात् भगवत्पाद श्री शुकदेव ने परीक्षित को कहा—हे 'परीक्षित! स्वायंभुव मनु से लेकर अद्यवत् जो १९५ करोड़ वर्षों का इतिहास मैंने आपको सुनाया है, इसको तुम वाणी का विलास और वैभव मत समझना। इस पृथ्वी पर बड़े—बड़े पुरुष अपने तेज और यश की गाथाएं छोड़ गए। इनमें जीवन का परम रहस्य, विज्ञान और वैराग्य निहित है:—

कथा इमास्ते कथिता: महीयसां ।
विताय लोकेषु यश: परेयुषाम् ।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो
वचोविभूतिर्न तु—पारमार्थ्यम् ।।

५. प्राचीन भारत में प्रत्येक हिन्दू राजा के लिए इतिहास का ज्ञान अनिवार्य था।

६. धार्मिक अनुष्ठानों, विवाहों, अश्मेध, राजसूय यज्ञों में इतिहास का वाचन आवश्यक था।

७. इतिहास लिखने के लिए प्रत्येक हिन्दू राजा के दरबार में वृत लेखक, चारण, भाट नियुक्त होते थे।

८. प्रत्येक राजवंश के कुलपुरोहित का भी दायित्व था कि वह राजवंश के इतिहास का लेखन करें। यथा गर्ग यादवों के कुलपुरोहित थे। बृहस्पति देवताओं के कुलपुरोहित थे और शुक्राचार्य असुरों के।

९. तीर्थ स्थानों पर राजवंशों, परिवारों के पंडे उनकी यात्राओं के वृत लिखते थे और यह परम्परा वर्तमान में भी प्रचलित है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज जीवन में इतिहास का कितना बड़ा महत्व है। इस वास्तविकता को अनदेखा करना या दुर्लक्ष करना या छुपाना एक बड़ा अन्याय है। अंग्रेज इतिहासकारों का यह कटाक्ष कि भारत की जलवायु गर्म होने के कारण यहां के लोग प्राय: सुस्त, आलसी, दीर्घसूत्री और पराक्रम शून्य होते हैं और इसी कारण यहां शीत प्रधान देशों की ओर से आक्रमण होते रहे। वास्तविकता इनसे उल्ट है और उसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :—

१. चन्द्रगुप्त मौर्य इसी देश की जलवायु में उत्पन्न हुए थे। उसने सिकंदर के साम्राज्य के पश्चिम के भारतीय क्षेत्रों के उत्तराधिकारी सेल्यूकस को युद्ध में पराजित कर उसके सारे इलाके छीन लिए। तब सेल्युकस ने अपनी सुपुत्री को विवाह में चन्द्रगुप्त को देकर उससे संधि की थी।

२. भारत के इतिहास के क्षात्र युग में ४० चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं। चक्रवर्ती सम्राट का जब राज्याभिषेक होता था तो वह सप्तद्वीपेश्वर (सप्त महाद्वीपों का सम्राट) की शपथ लेता था। रामचंद्र जी भी चक्रवर्ती सम्राट थे। अंतिम चक्रवर्ती सम्राट महाराजा युधिष्ठिर थे। वे सारे एशिया के चक्रवर्ती सम्राट थे। उस समय सारा एशिया हिन्दू था।

३. शिवाजी महाराज — महाराष्ट्र में उत्पन्न हुए और उन्होंने अपने देश को स्वतंत्र करने के लिए विदेशी मुगल साम्राज्य के विपक्ष में २५५ युद्ध लड़े। उनके शौर्य का कीर्तिमान है कि वह न तो किसी युद्ध में पराजित हुए और न ही जख्मी हुए।

४. सरदार हरिसिंह नलवा महाराजा रणजीत सिंह के सेनापति थे। उनके शौर्य की आज भी अफगानिस्तान में धाक है। वहां की पठान माताएं अपने बच्चों को चुप कराने के लिए कहती हैं 'खामोश वाश, हरिसंह नलवा आयेद'— चुप करो, हरिसिंह नलवा आ रहा है। ८वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक मुस्लिम अत्याचारों की नदी पश्चिम से पूर्व की ओर बहती रही, परन्तु लोग १९वीं सदी के सेनापति उस वीर के दर्शन करने के लिए महाराजा रणजीत सिंह की राजधानी लाहौर में आते थे कि वह कौन—सा वीर है जिसने यह महान कार्य किया है।

हरिसिंह नलवा को समाप्त करने के लिए मुसलमानों ने अंतिम जिहाद की तैयारी की और उनका मुखिया पश्चिम पंजाब की मुस्लिम रियासत कल्लान के नवाब के पास आशीर्वाद लेने गया। उसने नवाब से निवेदन किया कि यह काफिर हरिसिंह नलवा मुस्लिम

जाति को समाप्त करता जा रहा है। हम सारे एकत्रित होकर इसको समाप्त करने के लिए मार्गदर्शन के लिए आपके पास आए हैं, आगे इनशा अल्लाह। नवाब ने उत्तर दिया कि तुम एकत्रित होकर आए हो, यह तो ठीक है, परंतु तुमने यह जो इनशा अल्लाह कहा है, यह ठीक नहीं है। मुखिया बोला कि हम मुसलमानों का कोई भी काम अल्लाह के आशीर्वाद के बिना पूरा नहीं होता है। नवाब ने कहा कि पहले अल्लाह के द्वारा काम होते थे, अब नहीं होते हैं। मुखिया ने पूछा कि अल्लाह कहां चले गए? नवाब ने कहा वह जहां थे, वहीं पर हैं, परन्तु उनके आशीर्वाद से अब काम नहीं होते हैं क्योंकि वह हिन्दू हो गए हैं। उस नलवा वीर ने इतना पराक्रम किया कि अल्लाह को भी हिन्दू बना दिया। वह तो पंजाब की गर्म जलवायु में ही पैदा हुआ था।

इनता ही नहीं गुरु गोविंद सिंह, राणा प्रताप, छत्रसाल, दुर्गादास राठौर और असम के लाचित बरफुकन के शौर्य की गाथाएं विश्वविख्यात हैं।

अंग्रेजों ने इतिहास को विकृत कर यह भी प्रचार किया कि वर्तमान में जो हिन्दू हैं, इनका पूर्व का नाम आर्य है। इनके पूर्वज मध्य एशिया में रहते थे और वह वहां से ३५०० वर्ष पूर्व आक्रमक के नाते भारत आए, परंतु यह देश इनका नहीं है, वह भी विदेशी हैं। किन्तु अब पुरातात्त्विक खोंजों, वैज्ञानिक अनुसंधानों, सरकारी—गैरसरकारी माध्यमों, राष्ट्रीय परिसंवादों और अन्य साक्ष्यों के द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि भारत में लोग बाहर से नहीं आए, अपितु भारत से अन्य देशों में गए हैं। आर्यों की आदि जन्मभूमि भारत ही है इसके लिए महाभारत और मनुस्मृति के निम्नलिखित साक्ष्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं :—

> *'हिमालयमिषाणोज्ये ख्यातम् लोकेषु पावन*
> *अर्धयोजनविस्तीर्णः पंचयोजनमायत।*
> *परिमंडलयोर्मध्ये मेरुत्तमः पर्वतः*
> *ततः सर्व समुत्पन्ना वृत्तियां द्विजसत्तमः ।।* (महाभारत)

अर्थात् संसार में पवित्र हिमालय विख्यात है। उसमें अर्ध योजन चौड़ा और पांच योजन घेरे वाला उत्तम सुमेरू पर्वत है, जहां सम द्विजों की उत्पत्ति हुई।

जब उपरोक्त भारत के सुमेरु पर्वत पर मानवोत्पत्ति हुई और सब जातियों, सब राष्ट्रों, सब धर्मों, सब शास्त्रों और सारे ज्ञान—विज्ञान का उदय यहीं भारत से हुआ, तो किसी के बाहर से आने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

> *'आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।*
> *तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः।।*

मनुस्मृति—२/२२

अर्थात् जिस क्षेत्र के पूर्व और पश्चिम में समुद्र है, जो पर्वतों के मध्य है तथा घिरा हुआ है वह सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के अंतर में स्थित है। वह देव निर्मित आर्यावर्त देश हैं

उपरोक्त श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि भारत के पूर्व और पश्चिम में समुद्र है। सरस्वती और दृषद्वती (ब्रह्मा की इरावती) नदियां उसमें बहती थी। अतः यही भारत, आर्यों की आदि जन्मभूमि है।

उपरोक्त दोनों श्लोकों से स्पष्ट होता है कि भारत ही आर्यों का मूल स्थान और तत्संबंध में जो विभिन्न सिद्धांतों का आविष्कार पाश्चात्य इतिहासकरों ने किया है, उनका कहीं भी कोई साक्ष्य वैज्ञानिक और पुरातात्त्विक खोजों में उपलब्ध नहीं है।

आर्यों का आदि देश भारत ही है, ऐसा स्वामी विद्यानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक ***'आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता'*** में सिद्ध किया है। संपूर्णानंद ने आर्यों का आदि देश सप्त सिन्धु अर्थात् भारत ही बताया है। इसलिए आर्यों के आक्रमण का मिथ्या सिद्धांत अब भूमिसात् हो चुका है। इसमें कोई दम नहीं है।

भारत एक देश नहीं अपितु यह उपमहाद्वीप है, यह प्रचार भी अंग्रेजों द्वारा और बाद में उनके हस्तक मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना के द्वारा किया गया। भारत का वर्णन अथर्ववेद में मातृभूमि के रूप में है। इसकी प्रशंसा में ६३ श्लोक दिए गए हैं। प्रत्येक श्लोक में मातृभूमि की विशेषता का वर्णन है और अंत में प्रणाम है। हिन्दू आदिकाल से भारत को अपनी मातृभूमि, पुण्यभूमि और कर्मभूमि के रूप में पूजते आए हैं। राष्ट्रीय जीवन की अधिष्ठात्री मातृभूमि ही होती है। और इसी कारण हिन्दू अपने को इसकी संतान मानते हैं। अतः भारत अखंड, अविभाज्य, एक सूत्र और एकरस देश है, उपमहाद्वीप नहीं।

एक हजार वर्षीय हिन्दू—मुस्लिम संघर्ष में हिन्दुओं के प्रतिरोध के शौर्य की महत्वपूर्ण घटनाओं को दरबारी मुस्लिम इतिहासकारों व उनके समर्थक साम्यवादी और धर्मनिरपेक्ष इतिहासकारों ने छुपाने या दुर्लक्ष करने के जो प्रयत्न किए हैं, उनकी वास्तविकता स्थानीय इतिहास की पुस्तकों में उपलब्ध है। इसके संबंध में काफी साहित्य प्रकाशित हो चुका है। उसे प्राप्त कर उसका अध्ययन करना चाहिए।

संदर्भ पुस्तकें :

१. तारीख—ए—राजगाने कदीम आर्यवर्त

२. प्राचीन भारत का प्रामाणिक इतिहास

३. विश्व की कालयात्रा

४. भारतीय कालगणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप

५. Birth-Dates of Budha

६. भागवत पुराण

७. भारतीय इतिहास शास्त्र और कालक्रम

समर्थ गुरु राम दास जी की □□□ वीं जयन्ती

● चेतराम, प्रान्त कार्यवाह

भारतवर्ष की सन्त परम्परा में समर्थ गुरु रामदास जी का एक विशिष्ट अतुलनीय स्थान है जिन्होंने अध्यात्म के दिव्य मार्ग से राष्ट्र शक्ति को सशक्त बनाया है। अतः समर्थ गुरु रामदास युग प्रवर्तक राष्ट्र भक्त सन्त थे।

उत्तर भारत में जिस प्रकार हमारे व्यावहारिक जीवन में मुख्यतः विक्रमी सम्वत् का प्रयोग होता है, उसी प्रकार पश्चिमी भारत में शक सम्वत् का अधिक प्रचलन है। इस आधार पर समर्थ गुरु रामदास के जन्म के उल्लेख में ***इनका जन्म शक सम्वत् १५३० की रामनवमी को महाराष्ट्र के जाब गांव में हुआ था। अतएव रामनवमी, अर्थात चैत्र शुक्ल नवमी, शक संवत् १९३०(कलियुगाब्द ५११०, विक्रमी संवत् २०६५) ईस्वी सन् १४ अपैल, २००८ समर्थ गुरु रामदास जी का ४००वां जयन्ती दिवस है।***

समर्थ गुरु रामदास के पिता का नाम सूर्या जी पंत ढोसर और माता का नाम राणू बाई था। इनका बचपन का नाम नारायण था। जब राम भक्ति से इन्होंने प्रभु राम के दर्शन पा कर अपनी जीवन साधना को प्रभु चरणों में अर्पित कर दिया तो वे रामदास कहलाए। समाज प्रबोधन और समाज संगठन का इनमें अद्‌भुत सामर्थ्य था। इसीलिए वे समर्थगुरु रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

समर्थ गुरु रामदास ने त्रयोदशाक्षरी ***श्री राम जय राम जय जय राम*** महामंत्र का १३ करोड़ जाप करके दिव्य शक्ति अर्जित की और इस महामन्त्र का महात्म्य जन–जन तक पहुंचाया। मनुष्य को दृढ़ निश्चय के साथ अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हो कर राष्ट्र और समाज की सेवा में उत्साहपूर्वक आगे बढ़ना है। सर्वशक्ति सम्पन्न रघुवीर श्रीराम जी की कृपा से समाज के संगठित श्रेष्ठ कार्यों में सफलता अवश्य मिलती है। सर्वकार्य सिद्धि के लिए इन्होंने ***जय जय रघुवीर समर्थ*** का उद्‌घोष किया। इन्होंने स्वस्थ एवं हृष्ट–पुष्ट जन–शक्ति को खड़ा करने के लिए देश भर में भ्रमण कर के स्थान–स्थान पर मठ एवं व्यायामशालाओं की स्थापना की। दास बोध एवं मनोबोध आदि कृत्तियों की रचना कर के समाज का कल्याणोन्मुखी मार्गदर्शन किया। कार्यों की प्राथमिकता का परियच देते हुए गुरु समर्थ जी ने लिखा है–

मुख्य हरिकथा निरूपण। दूसरें तें राजकरण।
तिसरें तें सावधपण। सर्व विषई।।

अर्थात् पहला महत्त्वपूर्ण कार्य हरि कथा का निरूपण, दूसरा कार्य राजनीति विषयक चिन्तन और तीसरा सभी क्षेत्रों में जागरूक हो कर कार्य करना है।

महापुरुषों के बारे में समर्थ गुरु रामदास ने कहा है–

मनापासून भक्ति करणें। उत्तम गुण अगत्य धरणें।
तया माहापुरुषकारणें। धुंडीत येती।।
ऐसा जो माहानुभाव। तेणें करावा समुदाय।

जो सच्चे मन से ईश्वर की भक्ति करके उत्तम गुणों को आचरण में धारण करते है, वही सचमुच महापुरुष होते हैं। ऐसे श्रेष्ठ गुण सम्पन्न महापुरुषों को लोक संगठन का नेतृत्त्व करना होगा।

समर्थ गुरु रामदास ने समाज में शौर्य भाव जागृत किया। उन्होंने छत्रपति शिवाजी को हिन्दू साम्राज्य की स्थापना के लिए प्रेरित किया और इन्हीं का आशीष प्राप्त कर के ***छत्रपति शिवाजी का ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी शक संवत् १५९६ (कलियुगाब्द ४७७६ ईस्वी सन् ६जून, १६७४) को हिन्दू साम्रराज्य के सम्राट के रूप में राज्याभिषेक हुआ।*** शिवाजी के राष्ट्रनिष्ठ असाधारण व्यक्तित्त्व से समर्थ गुरु जी बहुत प्रभावित थे। शिवा जी के प्रति उनके उदात्त भाव इन काव्य पंक्तियों में अभिव्यक्त हैं–

महामेरु तुम निश्चय के हो,
दुखी जनों के आश्रय तुम हो।
अखण्ड स्थिति के दृढ़ व्रतधारी,
इस युग के तुम राजर्षि हो।।
नित परहित रत क्षण क्षण दिन दिन,
और न दूजा कोई चिन्तन।
कौन गिन सका तेरे सद्‌गुण,
अनुपम अतुल तुम्हारा जीवन।।
तुम हो नरपति हयपति गजपति,
तुम हो गढ़पति भूपति जलपति।
तुम प्रतीत होते हो सुरपति,
पास तुम्हारे ईश्वर शक्ति।।

माघ कृष्ण नवमी, शक संवत् १६०३ को समर्थ गुरु रामदास जी परम तत्त्व में विलीन हो गए परन्तु इन का दिव्य जीवन हमारे राष्ट्रीय समाज का निरन्तर मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

समर्थ गुरु रामदास जी की ४००वीं जयन्ती को देश भर में समर्थ गुरु रामदास चतुर्थ जन्म शताब्दी वर्ष के रूप में मनाया जाना देशवासियों का पुनीत दायित्व है। इस उपलक्ष्य में देश के सभी सामाजिक संगठनों एवं केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों से समर्थ गुरु रामदास जी के यशस्वी जीवन पर वर्ष भर भिन्न–भिन्न कार्यक्रम आयोजित करवाने का विनम्र अनुरोध है। इससे समर्थ गुरु जी के आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय विचारों को व्यापक विस्तार मिलेगा। राष्ट्रीय समाज में आदर्श कर्त्तव्य चेतना जागृत करने में इन आयोजनों का विशेष महत्त्व रहेगा और इससे हमारा राष्ट्रीय तथा समाजिक जीवन अधिक सुसम्पन्न और सुसंस्कृत होगा।

सिकन्दर अभियान की मुख्यस्रोत सामग्री और उसकी पराजय

• कृष्णानंद सागर

यह एक आश्चर्य की बात है कि जिस सिकन्दर का नाम भारतीय साहित्य में कहीं भी और किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं है, उसी की 'भारत विजेता' और 'सिकन्दर महान' के रूप में हमारी आधुनिक पुस्तकों में डुगडुगी पीटी जा रही है। आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तो भारत में कोई सिकन्दर को जानता तक नहीं था।

सन् १८६२ में प्रकाशित हेनरी बेवरिज की 'ए कम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' सम्भवत: प्रथम पुस्तक थी, जिसमें सिकन्दर के भारत पर किये गए आक्रमण का वर्णन है। इसके उपरान्त १८८० के लगभग डब्ल्यु.डब्ल्यु. हण्टर की 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' तथा १८९० के दशक में मैकक्रिंडल की तीन–चार पुस्तकें प्रकाशित हुई जिसमें सिकन्दर के आक्रमण का वर्णन किया गया। १९०५ में विंसेण्ट ए.स्मिथ की 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' प्रकाशित हुई। १९२६ से डब्ल्यू. एफ. थामस की 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' कई खण्डों में प्रकाशित होनी शुरू हुई और इसे भारत के विश्वविद्यालय में भी पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

एक के बाद एक प्रकाशित इन पुस्तकों के माध्यम से तत्कालीन भारतीय मनीषा पर भी सिकन्दर के भारत में चले तथाकथित विजय अभियान की छाप दृढ़ से दृढ़तर होती गई और भारतीय मनीषा इन विदेशी इतिहासकारों की ओर अत्यंत ही कृतज्ञ भाव से देखने लगी कि इन्होंने हमारे इतिहास के एक अज्ञात पृष्ठ को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। फलत: भारतीय साहित्य में, विशेष रूप से इतिहास ग्रन्थों में, सिकन्दर की तथाकथित विजयों को पर्याप्त स्थान मिलने लगा है और उसे 'सिकन्दर महान' कहा जाने लगा है।

प्रश्न उठता है कि जब भारतीय ग्रन्थों–ब्राह्मण ग्रन्थों, बौद्ध ग्रन्थों और जैन ग्रन्थों – में कहीं भी सिकन्दर अथवा उसके आक्रमणों का उल्लेख नहीं है, तो उपरोक्त इतिहासकारों की उसके विषय में सामग्री का स्रोत क्या है, इस पर विचार करना आवश्यक है।

सिकन्दर के साथ जो लोग भारत में आए उनमें से तीन ने भारत के विषय में कुछ लिखा। वे थे–

१. ***निआर्कस***– सिकन्दर ने इसे सिन्धु नदी तथा फारस की खाड़ी के बीच के समुद्र तट का पूरी तरह पता लगाने के लिये नियुक्त किया था।

२. ***ओनेसिक्रिट्स***– समुद्री यात्रा में वह निआर्कस के साथ था और बाद में उसने इस विषय पर और भारत पर एक पुस्तक लिखी थी।

३. ***अरिस्टोबुलस***– इसे सिकन्दर ने भारत में कुछ और काम सौंपे थे। ये तीनों सिकन्दर के सेनापति थे और उसके अभियान के प्रत्यक्षदर्शी भी। न केवल प्रत्यक्ष दर्शी प्रत्युत अभियान के दौरान लड़े गए युद्धों में सिकन्दर के सहयोगी भी। अत: उस अभियान के विषय में इन्होंने जो भी लिखा, उसे प्रामाणिक माना जाना चाहिए। सिकन्दर का यात्रा पथ, यात्रा पथ में आने वाले राज्य, विभिन्न राजाओं एवं विभिन्न व्यक्तियों से उसकी भेंट, यात्रा पथ के आसपास की भौगोलिक स्थिति आदि के वर्णनों पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं। लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि ये तीनों कोई इतिहासकार नहीं थे कि सम्पूर्ण घटनाक्रम को निष्पक्ष दृष्टि से देखते और लिखते। आखिर वे यूनानी सेनापति थे और सिकन्दर के ही समय वे भी भारत को पद दलित कर यूनानी श्रेष्ठता का सिक्का भारत पर जमाने के उद्देश्य से ही आए थे और अनेक युद्धों में भारतीयों के विरुद्ध लड़े भी थे, ऐसी स्थिति में वे कहीं भी अपनी पराजय का वर्णन करे, यह कैसे सम्भव था। अत: जहां–जहां सिकन्दर की विजय हुई, उसका उल्लेख तो उन्होंने गौरवपूर्ण ढंग से किया ही है, किन्तु जहां–जहां से पराजय का मुंह देखना पड़ा, उसका भी वर्णन ऐसा घुमा–फिरा कर किया है कि उसमें से पाठक को विजय का आभास मिलता है। इन तीनों की ही रचनाएं मूलरूप से उपलब्ध नहीं है। बाद के लेखकों की रचनाओं में इनके अंश मिलते हैं।

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में मैगस्थनीज यूनानी राजदूत के रूप में भारत में रहा था। वह सिकन्दर के अभियान का प्रत्यक्षदर्शी तो नहीं था, क्योंकि वह उसके कई वर्ष बाद आया, लेकिन वह तत्कालीन भारत के विषय में काफी कुछ लिखकर छोड़ गया है। दुर्भाग्य से उसका भी विवरण मूल रूप से नहीं मिलता। उसका पत्ता भी बाद के लेखकों की रचनाओं में उसके उद्धरणों से ही लगता है।

स्त्राबो (६४ ई. पू. से १९ ई. तक) ने भूगोल की एक पुस्तक लिखी। उसमें एक अध्याय भारत के बारे में है। यह अध्याय सिकन्दर के साथियों तथा मैगस्थनीज की रचनाओं से ली गई सामग्री के आधार पर लिखा गया है।

सिकन्दर के अभियानों का सबसे अच्छा वृतान्त (ऐवाबेसिस) एर्रियन(लगभग १३०ई. से १७२ ई.) ने लिखा है। इसने निआर्कस, मैगस्थनीज तथा भूगोल वेत्ता एराटोस्थनीज (२७६–१९५ ई.पू.) की रचनाओं के आधार पर भारत विषयक एक पुस्तक लिखी।

प्लूटार्क (लगभग ४५–१२५ ई.) ने अपनी पुस्तक 'लाईब्ज' (जीवनियां) में सिकन्दर की भी जीवनी कुल ग्यारह अध्यायों में दी है। इन अध्यायों में भारत का भी विवरण दिया है।

जस्टिन (द्वितीय शताब्दी ईस्वी)ने एक 'एपिटोम' (सारसंग्रह) लिखा। उसके १२वें खण्ड में सिकन्दर के भारत में विजय अभियानों का विवरण दिया गया है।

इनके अतिरिक्त कर्टियस (प्रथम शताब्दी ईस्वी) और डियोडोरस का नाम भी उल्लेखनीय हैं।

वास्तव में स्त्राबो, एर्रियन, प्लूटार्क, जस्टिन आदि से ही हमें पता लगता है कि निआर्कस, ओनेसिक्रिस, अरिस्टोमबुलस और मैगस्थनीज ने भारत विषयक विवरण लिखे थे। क्योंकि स्त्राबो,

एर्रियन आदि भी यूनानी लेखक थे और यूनानी पराभव को पचा पाना उनके लिये भी सम्भव न रहा हो, इसलिये हो सकता है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती लेखकों की मूल रचनाओं में से केवल उतनी ही सामग्री ली हो जितनी कि सिकन्दर की विजयों की परिचायक हो। शेष छोड़ दी गयी हो। जो भी हो, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के योरोपीय विद्वानों द्वारा लिखे गए भारत के इतिहास में सिकन्दर के अभियान से सम्बंधित सामग्री का मूल स्रोत उपरोक्त बाद के यूनानी लेखक ही हैं।

इन यूनानी लेखकों ने सिकन्दर और पोरस के युद्ध में सिकन्दर को विजयी बताया है और पोरस को पराजित। अगर पोरस पराजित हुआ था तो सिकन्दर ने उसे पूरी तरह मलियामेट क्यों नहीं कर दिया, क्योंकि इससे पूर्व ऐसे सभी युद्ध करने वाले राज्यों में उसने महाविनाश की स्थिति ला दी थी। वह अपने साथ युद्ध करने वालों के प्रति अत्यंत क्रूर था और उन्हें दंडित किये बिना नहीं रहता था। फिर पोरस के साथ ऐसा दयाभाव क्यों? ऐसा कहा जाता है कि सिकन्दर ने पोरस से पूछा कि 'तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाए? उत्तर में पोरस ने कहा– 'जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।' इससे प्रसन्न होकर सिकन्दर ने उसे उसका राज्य वापिस कर दिया।

प्लूटार्क के अनुसार 'सिकन्दर ने जो राज्य अपने पुराने शत्रु पोरस को वापिस लौटा दिया था उसमें पन्द्रह गणतंत्रों की भूमि शामिल थी, जिनके अधिकार में पांच हज़ार काफी बड़े शहर और असंख्य छोटे गांव थे।' (प्लूटार्क, लाइब्स ४०) – राधा कुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ.४०

प्लूटार्क के इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पोरस ने सिकन्दर को बुरी तरह पराजित करके उसे संधि के लिये मजबूर कर दिया और सिकन्दर द्वारा जीते गए पन्द्रह गणतंत्रों की भूमि पर भी पोरस ने अधिकार कर लिया।

सिकन्दर की प्रार्थना पर पोरस ने उसे आगे जाने का केवल रास्ता दे दिया, क्योंकि आगे के युद्ध अभियानों में कहीं भी पोरस ने उसकी सैनिक सहायता नहीं की, ऐसा उल्लेख कहीं नहीं हैं। यदि पोरस पराजित हुआ होता तो वह आगे सिकन्दर की सैनिक सहायता भी करता।

युद्ध में सिकन्दर की सेना का बहुत अधिक परिमाण में सफाया हो जाने और पोरस द्वारा सैनिक सहायता से इन्कार कर देने पर सिकन्दर ने बेबिलोनिया से और सैनिक टुकड़ियां भेजने के लिये लिखा। ये टुकड़ियां बहुत बाद में आकर उसे मिलीं।

एक बात पर सभी इतिहासकार एक मत हैं कि सिकन्दर ने व्यास नदी पार नहीं की। उससे पहले ही उसकी सेना ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। विश्व के इतिहास में क्या कोई और ऐसा उदाहरण है कि एक 'विश्व विजेता' की सेना इतनी भयभीत हो जाए कि वह आगे बढ़ने से इन्कार कर दे, विशेषकर तब जबकि वह उस 'विजेता' को 'देवपुत्र' समझती हो। आखिर ऐसी स्थिति क्यों आई?

इसका कारण एक ही समझ में आता है कि कुभा नदी से लेकर सिन्धु तक और उसके बाद रावी तक सिकन्दर की इतनी अधिक पराजय हुई कि उसके सैनिकों के मनों पर उसकी 'अजेयता' और देवपुत्रत्व की जो भव्य प्रतिमा अंकित थी, वह खण्ड–खण्ड हो गई। आगे बढ़ने में उन्हें पूर्ण विनाश दिखाई देने लगा। परिणामस्वरूप वापिस यूनान लौटने का निर्णय करना पड़ा और वह भी छुपकर सिन्धु नदी के रास्ते।

उसने ब्यास नदी पार नहीं की, इसका अर्थ यह नहीं है कि वह ब्यास के तट पर पहुंच ही गया था। ब्यास से वह दस–बीस–पचास किलो मीटर पहले ही वापिस मुड़ गया हो, यह सम्भव है।

एक दूसरी भी सम्भावना है कि ब्यास नदी पर पहुंचने से पहले ही किसी युद्ध में सिकन्दर मारा गया हो और उसके परिणामस्वरूप सेना निराश और हताश हो गई हो। जब भारत विजय का स्वप्न देखने वाला ही नहीं रहा, तो लड़ना किसके लिये, यह विचार उसमें घर कर गया। इस दृष्टि से शाकल (स्यालकोट) और उसके आसपास के वर्तमान जम्मू और कठुआ के निकट के क्षेत्रों में हुए छुट–पुट युद्ध महत्वपूर्ण हो उठते हैं। इन्हीं में से किसी युद्ध में वह मारा गया और सेना में घोर निराशा छा गई हो और वापिस जाने का निर्णय अन्य सहायक सेनापतियों ने किया हो। सिकन्दर की लाश को या तो वहीं कहीं दफना दिया हो अथवा उसे साथ लेकर वे वापिस गए हों। सिकन्दर की मृत्यु की घोषणा करना सम्पूर्ण सेना के विनाश को आमंत्रण देना था।

उसके सेनापतियों के सामने प्रश्न खड़ा हुआ कि वापिस जाते हुए मार्ग में पोरस, आम्भी आदि से सिकंदर द्वारा भेंट करना राजकीय औपचारिकता की दृष्टि से आवश्यक होगा। ऐसी स्थिति में उसकी मृत्यु का भेद खुल जाएगा और एक भी सैनिक बच कर वापिस नहीं जा पाएगा तथा इसका अगला परिणाम यह होगा कि सिकन्दर द्वारा जीते गए सम्पूर्ण यूनानी साम्राज्य पर भारतीयों का अधिकार हो जाएगा। अत: छिपकर सिन्धु नदी के रास्ते जाने का निर्णय लिया गया। सिकन्दर विहीन उस सेना को भी रास्ते के जनपदों ने सुरक्षित नहीं जाने दिया तथा बहुत कम ही लोग बचकर वापिस जा सके।

जो सेनापति वापिस यूनान पहुंचे उन्होंने सबसे पहला काम किया सिकन्दर द्वारा विजित प्रदेशों को आपस में बांट लेना। इस बांट में सिंधु नदी के पश्चिमी क्षेत्रों का तो उल्लेख है किन्तु पूर्वी क्षेत्रों जिसमें तक्षशिला, पंजाब, सिंध आदि आते हैं, उनका कहीं उल्लेख नहीं है। यह तथ्य भी इस बात को सिद्ध करता है कि सिंधु के पूर्वी क्षेत्रों में सिकन्दर पराजित हुआ था।

यूनानी लेखकों ने सिकन्दर को बहुत ही दयालु शरणागतवत्सल और नीतिवान के रूप में चित्रित करने की कोशिश की है। किन्तु उन्हीं के द्वारा लिखित उसके कृत्य क्रूरता से भरे हुए हैं। कुल मिलाकर यूनानियों के विषय में ही पाणिनि की एक टिप्पणी मिलती है। पाणिनि सिकन्दर से बहुत पहले हुए हैं। अष्टाध्यायी के सूत्र क्रमांक २–१–६ के उदाहरण में पाणिनि लिखते हैं– ***'मद्रणां समृद्धि: सुमद्रम्, यवनानाम् यृद्धि: दुर्यवनम्।'*** (धर्मवीर, पंजाब का इतिहास, पृष्ठ ६५१)

यहां स्पष्ट है कि यवनों की श्रेष्ठ प्रकृति नहीं थी। सिकन्दर यवन जाति की प्रकृति से अलग नहीं था।

Invasion of India by so called World Conquer Alexander-the-Great

His death in Dwigart "Present Jammu" the area of River Chander-Bhaga "Chenab" by the brave Dogra

- Vivek Jyoti

Alexander alias 'Sikander' is known as a great warrior and most successful military commander in history. He was born in July 356 BC (Kaliyugabd 2746) and is said to have been died in 323 BC (Kaliyugabad 2779). It means, the alexandrian history pertains to the period ranging between 2362 to 2329 years old. However, owing to so many contradictions and diversifications in the writings of different historians, it is difficult to differentiate between facts and fictions. In fact, discussions in writings regarding Alexander's the happenings do not belong to much old times.

The Alexandrian history is less than three and half centuries B.C. old. Therefore, there should not have been so many contradictions in the stories of that time, particularly when the happenings are related to a person,who is said to have concurred whole of the world and called all times great. Two and half centruy period is a very small period, when compared to the times of Ramayana, where events had taken place millions of years ago. The happenings of Ramayana are crystal clear and there are no contradictions in the history of Ramayana. Similar is the case of Mahabharta and other Indian historical events. Therefore, it is not difficult to understand the reasons of contradictions in the Alexandrian history, which is of recent times. These contradictions are indicative of the fact that deliberate attempts have been made either to exaggerate the things or to hide the truth by narrative fictions.

Another surprising fact is that there is no mention or a very little mention of Alexander in the writings of Indian historians of that time. There can be two reasons for this. The first reason may be that the Indian historian of that time did not consider it an important worth mentioning event. This can happen only if Alexander had no important victory in India or his attempts to invade India were thwarted by some small rulers of border State by inflicting a crushing defeat on him. The other reasons may be that during the British rule in India, Indian historical facts might have been distorted in order to put into effect their view point.

The History of Alexadner is available as mainly propounded by the Western writers such as Justin, Arrian, Curtius, Ptolemy, plutarch, Diodorus Siculus and Callisthenes, the official historians of Alexander. The writings of almost all other writers seem to be based on them.

Alexander was born in July, 356 BC (Kaliyugabad 2746). He was son of King Phillip II of Macedon and his fourth wife, Epirote, the princess of Olympias. However, some authors including five historians of antiquity (Plutarch, Arrian, Curtius, Diodorus and Justine) are of the opinion that he was not a legitimate son of the King Phillip. Alexander had not good relations with the King. There is a reference in this regard, in 339BC (Kaliyugabad 2763), King Phillip married a fifth wife, the Macedonian naming Cleopatra. Attalus, the uncle of bride, supposedly gave a toast during the wedding feast with his wish that wedding will result in a legitimate heir to the throne of Macedon. Alexander hurled his goblet (glass) at Attalus shouting, "What am I, a bastard then?" Alexander's father, apparently, had drawn his sword and mobbed towards Alexander, but then he had fallen in a drunken stupor. Alexander remarked, "Here is the man planning on conquering from Greece to Asia and he cannot move from one table to another."

Alexander, his mother and sister (also

named Cleopatra) then left Macedon in anger. Eventually, Phillip reconciled with Alexander and Alexander returned home[1].

In 336BC (Kaliyugabad 2768), Phillip was assassinated at the wedding of his daughter (Alexander's sister). Some authors are of the view that Phillip's murder was planned with the knowledge and involvement of Alexander. After Phillip's death, the army proclaimed Alexander, then aged 20, as the new king of Macedon. Alexander then consolidated his control of Macedonia and the rest of Greece.

In the spring of 334 BC (Kaliyugabad), Alexander invaded Asia Minor and defeated a Persian force at the battle of Granicus. In 333 B.C. (Kaliyugabad 2769) Darius III (king of persia) himself took the field against Alexander, but he was defeated in the battle of lssus and was forced to flee. Alexander again defeated Darius III at the battle of Gaugamela and he fled again. These victories were considered to be very big victories, but since Darius fled twice from the battlefield, it is clear that he was extremely timid, and hence these were the victories against a weak king. However, Alexander also considered these victories big victories and he became over confident and started planning to conquer whole of the world.

Here it is also interesting to note that some western authors like Jona Lendering are of the view that there was no battle at all at Gaugamela. Alexander benefited because his Persian opponents were demoralized and Alexander merely attacked a group of people who were only too willing to flee[2]. Jona Lendering in his book[3] has traced the events in detail from 20th September, 331 BC to 1st October, 331 BC. He has explained that Astronomy had a major role to play at that time. There was a lunar eclipse and Saturn was visible on 20th September, as the eclipse become total, a wind from western side was blowing. The Astronomers predicted that the end was near for the ruler of Persia and the causes of his demise will be an enemy from the West. The Astronomer Diaries recorded a new omen in the early hours on 23th September. A meteor had flashed in the sky and its light was visible on the ground. Astrology was not a secret doctrine and there were many good astronomers in Darius's army. The next morning Darius received the news that his wife had died in labour. These happenings demoralized Darius and Persian forces badly. The Persian King was keen to avert a battle. He sent repeated messages with peace proposals. He and his army was badly demoralized by the bad omens that he was forced to confess. Peace proposals were of no use as Alexander rejected the proposals. Under these circumstances, this was not a great victory of Alexander.

Now comes the main part of story related to the topic i.e. his invasion of India. Alexander was over-confident after the battle of Gaugamela and planned to conquer the whole of the world. He reached up to the bank of Indus (Sindhu) river via Kabul without any big resistance. The next territory was Takshashila, which was extended from the river Indus to the Hydaspes i.e. Jhelum. (Takshashila, the western side of present day Jummu and Kashmir, which is a part of present Pakistan). The King of Takshashila died just before the invasion of Alexander and his son Ambhi, the new King submitted to the authority of the Alexander [4]. The reasons of his submission to the authority of Alexander are not known. There may be various reasons. May be, Ambhi was a new ruler and he might have been ill-advised. Another reason might be that he was frightened of Alexander. Thirdly many authors opined that he had enmity with Porus and was willing to take revenge from Porus. This way Alexander reached Takshashila without any big hurdel after the battle of Gaugamela.

On the other side (eastern side) of Jhelum, there was a small kingdom of Porus. The territory of kingdom of Porus was at the northern border of Punjab (Now the Pak occupied Kashmir) and was not bigger than a district of modern Punjab. When Alexander's envoy summoned Porus to meet Alexander, he proudly replied that he would undoubtedly do so, but at his own frontiers and in arms. Alexander made preparations to fight against him and the way, in which the Greek writers

describe the campaign showed that it taxed the resources and ingenuity of Alexander to the utmost[5]. The upcoming battle was most daring of all the adventures of Alexander as hitherto he had fought uncivilized tribes (with the exception of Persia). Now in the strange new world he was at grips with a higher civilization[6].

The great problem for the Alexander, the invader was how to cross the river Jhelum safely. Day and night, Porus was alert. He made number of feigned attacks. Trumpet sounded; words of command rang out; cavalry filed down to the bank an boats full of soldiers were put out on the river. Porus was ready for battle, he lined the banks with his war elephants. But suddenly Macedonians returned, leaving the King Porus disappointed[7]. This went on for many days. Alexander tried to cross the river several times. Describing one such incident Curtius says that a part of Alexander's army reached on the island of the river Jhelum,. (It seems that there was an island between the two banks of river). The soldiers of Porus reached on the island by swimming and attacked Macedonians. They killed many Greeks and some Greek soldiers jumped into the river to save their lives only to find water graves in the river[8]. Alexander realized that he cannot cross the river this way. He then tried to locate a safe passage so that he could cross the river by deception (cheating) and in fraudulent manner. However Porus was alert. He had deputed his son along with some soldiers to keep a vigil on the enemy. Alexander was successful in finding a crossing point about 16 miles upstream of his camp, where the river was broader with less flow of water. Alexander tried to cross the river in one stormy night. (However he kept a part of his army in the camp under the command of General Cratus to mislead Porus). But, on crossing the river, he found Prince (son of Porus) ready. Arrian says that Prince injured Alexander and killed his horse Bucephalus[9]. This way Alexander received first jolt of his life. Since, the Prince had no adequate force with him and he was killed. Thereafter, the major portion of the army crossed the river.

Scholars give different accounts of the both Armies. It is said that the strength of Alexander's army was 1,20,000 infantry and 8500 cavalry, whereas that of Porus was 30,000 infantry, 4,000 cavalry, 240 chariots and 200 war elephants, i.e. less than half of the Alexander's force. Porus was a king of small territory, but he was a brave person. To avoid heavy bloodshed, he tried to avoid the war by fighting alone with Alexander. Justine(3rd century Roman author) says that as the battle began, Porus asked the Greeks to let their leader fight him alone (Dwand Yudh) but Alexander rejected the proposal and attacked the Indian Army. Thereafter, Porus ordered destruction. In the first attack itself, Alexander fell on the ground and his bodyguards had to save him by removing from the battlefield[10]. This incident shows that Alexander was a timed and coward person, who was dependent on his big army. He used to keep enough bodyguards for his safety even in the battlefield. He rejected the proposal of dual fight and compromised with the lives of lakhs of people to fulfil his dream and desire of ruling the world.

Almost all the Western authors are of the view that Alexander defeated Porus, but their writings are full of contradictions and do not support their views. Almost all the writers (although in different manner) say that Porus was defeated due to his elephants, who crushed the army of Porus itself, when they were injured during the battle. However, the details do not support their views. Jeam Filliozat says that Greeks feared from the elephants as they terrified the horses of Greeks and the men were also not accustomed to fighting them[11]. Curtius says that the elephants terrified everybody in Alexander's army. The roar of these elephants not only panicked the men but also horrified the horses and they fled away. This resulted in chaos and they tried to find safer places. Alexander directed to attack the elephants. The attack annoyed the elephants and they counter attacked the men and crushed many of them to death under their feet. The most horrifying scene was that when these elephants used to lift the men by trunks and surrender them to Mahaouts (trainers of the elephants), who separated their heads from their

bodies. This continued for whole of the day[12].

Diodorus says that the elephants were very powerful and they proved very useful. They crushed many Greeks under their feet. Sometimes, They used to lift the Greeks with their trunks and then throw them on ground. They were also using their tusk to kill the Greeks[13].

Another author says that two hundred elephants came striding like moving rocks. On the tallest of them, sat Porus himself "six cubits and a span" in height, an extraordinary stature. Porus towered above his men. His helmet gleamed in the Sun. Alexander watched him and remarked, "I see at last a danger that matches my courage. It is at once wild beasts and men of uncommon mettle that the contest now lies[14]. All these quotes prove that the elephants harmed the army of Alexander badly. There is another story in this regard. Seleucus was one of the Generals of the army of Alexander, who founded the Seleucid dynasty and the Seleucid empire after the death of Alexander. In 303 BC (Kaliyugabad 2799) he had reached an agreement with Chandragupta Maurya vide which he had ceded a big territory to Chandragupta in exchange for 500 war-elephants[15]. This proves that the Greeks were willing to have war-elephants at any cost after they had seen their role in the war against Alexander. Therefore, there is no reason to agree with the argument that Porus lost the battle due to elephants.

Some authors explain the surrender of Porus like this. At last, the brave army of Porus was no more, but Porus fought on. At the request of Alexander, the king of Takshashila went forward and entreated Porus to surrender. Porus on recognizing him called him Traitor and prepared to smite him with a javelin. The King of Takshashila fled. Thereafter, Alexander sent repeated messages and at last Porus agreed to surrender[16]. Curtius says that the man who went to discuss with Porus the terms of the treaty was the brother of the King of Takshashila and Porus killed this traitor and shows his patriotism. After this Alexander sent Mirras, a friend of Porus to start negotiations with Porus[17]. However, it is difficult to believe that even on winning, Alexander sent messenger after messenger and Porus unused to punish them in spite of his loss. It seems that Alexander was terrified badly and saw his defeat. Therefore, he sent messenger after messenger as was done by Darius-III in the battle of Gaugamela. This view has also been supported by a great author E.A.W. Bedge, who says[18] that in the battle the major portion of the Cavalry of Alexander was killed. He realized that if he continued the battle, he will be finished. Therefore, he requested Porus to stop the battle. As per the Indian tradition Porus forgave Alexander.

The Victory of Porus gets confirmed from the fact that territory won by Alexander (it may also include the territory of Takshashila) was added to the kingdom of Porus. There is also no evidence that Alexander or his successor ever ruled any portion beyond the eastern side of Indus. The territory of his successor Seleucus was also up to Indus. It can not be believed as claimed by some authors that Alexander returned the kingdom of Porus after his win. There is no other example from Greece to Indus where Alexander had returned the territory to the defeated king. In fact he used to ensure the death of his enemy. He had deputed his officers to kill Darius, when he fled after the battle of Gaugamela. However, it seems that Porus had forgiven Alexander and reached an agreement with him vide which Alexander gave some territory to Porus and also promised Porus to help him in fighting with his enemies.

In this battle there were heavy casualties on both sides. But biggest loss for Alexander was that his army got demoralized . It was their first defeat. The army which had not tasted the defeat from Macedonia to Jhelum had been defeated by a ruler of small territory and that too with less than half of the strength of the Army, Alexander had. The hopes of Greek soldiers to conquer India were dashed to the ground by a ruler of a small border State. The soldiers might have been terrified to face Ghananand, who was the King of powerful empire of Magadha with Capital Patliputra (Present Patna). However, Alexander like a mad elephant was determined to move forward up to Indian Ocean, but his problem was that his army

was not ready to move further at that time. Since Porus was willing to settle scores with his enemies in India and Alexander was determined to continue with his plan, both seem to have reached at an agreement. It seems that Porus allowed Alexander to remain in Punjab for some time. In this time Alexander sent back his badly injured soldiers and called new soldiers to replace them. Alexander's Army seems to have gained confidence because mighty Porus was accompanying them.

In the neighbourhood of the territory of Porus, there was another small state (from river Jhelum to Chenab) known as Abhisar. The capital of this State was near present Punchh in J&K. The king of Abhisar had good relations with Porus and they had also fought some wars jointly. There are some references which say that at the time of battle of Porus with Alexander, the King of Abhisar had proceeded with his army to help Prous, but the battle started before he reached[19]. In these circumstances, it seems that the Porus had made proposal to King of Abhisar to attack Kathaioi (perhaps Kathua is distorted name of Kathaioi) with help of Alexander, which he accepted. Kathaioi along with some other republicans had defeated the joint armies of Porus and Abhisar shortly before the invasion of Alexander[20]. However, it does not seem correct that the King of Abhisar had surrendered before Alexander out of fear.if he had to surrender, he would have done it prior to his attack on Porus, when Alexander summoned all the rulers and ambhi reached an agreement with Alexander. It seems more appropriate that Porus (who had gained confidence after his win over Alexander and had emerged stronger with the inclusion of some territory and their armies e.t. that of Takshashila) and King of Abhisar considered it a golden opportunity to take revenge from Kathaioi with the help of Alexander.

Before discussing the battle of Kathaioi, it is important to discuss about the geography of that area, which can be understood with the help of map. The area between the rivers Chenab and Satulj was of the brave Dogras, which was divided in two parts i.e. Dwigart and Trigart. The area between the river Chenab and Ravi was called "Dwigart". The different scholars have given different meanings such as city, area and country etc. but the most convincing meaning of word 'gart' seems to be area/city on the banks of river. There are some examples which support these views. There are some Russian cities with similar names having word 'grad' as suffix, such as Leningrad, Volgograd. Leningrad (modern name Saint Petersburg) is a city on the bank of the river Neva. Similarly Volgograd (Old name Stalingrad) is situated on the bank of Volga River. Grad seems to be distorted word from 'gart'. Therefore, 'Dwigart' means area situated on the banks of two rivers.

After the river Ravi, the area was called "Trigart', which means the area covered by three rivers. These rivers are Ravi, Satluj and Beas. There was a trend of uniting of States to become a big group at that time. In 'Trigart' there were six small independent states[21]. All these States had formed a Union with the name "Trigart Shashta" to fight Alexander.

There were two states in Dwigart. The first one was Kathaioi and second was Sabhuti (Greeks used to call it Sophytes). Greek authors have described the political system of these states in detail. Diodorus says that they were governed by laws in the highest degree and their political system was one to admire[22]. Beauty was held among them in highest estimation. The men and women used to select their life partners on the basis of looks for beauty in the children without a reference to dowry or high birth etc. Referring to Strabo, Prof. Jayaswal says that medical examination of the infants used to be carried out by medical officer specially appointed for the purpose and the child was used to be killed in case any deformity or defect was found in his body. It is said that military training was compulsory for everybody. It means that every citizen was also a soldier. Both these States (Kathaioi and Sabhuti) had united against joint armies of Porus (it also included the army of Takshashila), king of Abhisar and Alexander. The (Dwigart army) had formed

sakat-vyuha or 'waggon-formation[23].

The joint army (of Porus ect.) attacted Kathaioi. The army of Dwigart had made posts for battle everywhere. In the first attack itself both sides were harmed badly. The soldiers of Dwigart fought very bravely and did not submit, although they were outnumbered.

The women put city on fire and jumped into the fire along with their children[24]. Greeks were frightened to see the courage and of the people. After this first attack there is no mention in history about the further involvement of King Porus and King of Abhisar in any way. It seems that they had withdrawn from the battle. This withdrawal also strengthens the view that Porus had won the war against Alexander and King of Abhisar had accompained them due to his friendship with Porus and not out of fear of Alexander. The Alexander however continued. There may be two reasons for his continuance. The first reason may be that he was still hopeful to reach Indian Ocean By defeating Ghananand as Ghananand was not considered a brave man itself and he used to enjoy luxurious lifestyle, although he had a big army. The other reason may be that he might have thought that he will not be resisted further as his attack on Kathaioi will act as deterrent to smaller and there after by consolidating his position by winning over smaller States, he will be able to attack Ghananand.

However, it was not the end of battle in Dwigart, but was beginning. Since the Dogras were united and every citizen had military training, the battle reached in streets. The posts for battle were made in every city and in every village. Every part of Dwigart was ready for war. Several attacks were made on Alexander from all the sides after he entered Dwigart and big war started. Alexander had reached near present Kishatwar and a big war started. Alexander had reached near present Kshatwar, where small river (may be Marudvirdha) meets with Chenab. However, during the war, Greeks suddenly decided to return as they considered this area unlucky. Some authors say that the Greeks had tired and they were feeling home sick, therefore, Alexander decided to return. It does not seem to be a valid reason as Alexander had called some new soldiers after with Porus and since they had come recently how they tired? The second biggest reason against this argument is that the persons, who did not tired right from Macedinia to Dwigart, how they felt tired suddenly in Dwigart, when they were near to become world conquers as they had reached the last leg of their campaign. Reaching so near the target would have acted as motivating factor and would have overcome their fatigue. Therefore, it seems that something serious might had happened, due to which they decided to return at once.

The Greeks during their invasion had given names to various places and similarly they called Chenab as 'Sandro-phagos'. The English translation of 'sandro Phagos' is Devourer of Alexander[25], which means Destroyer of Alexander. From this a conclusion can be drawn that Alexander was destroyed/killed in this region. Otherwise there appears to be no other reason to call it Sandro-phagos.

Other reason, which makes it clear that Alexander, was killed by Dogras in this region is that to back his journey they did not choose the path from where they had come. They chose a different path altogether. This was indeed a sudden and surprising development and gives way to certain doubts. It seems that the only reason of running the Greeks through sea was to conceal the fact of his death because people could have recognized the Alexander on the path from where they had come and if people came to know that Alexander had died not even a single Greek could have survived. There is a strong possibility that one of his Generals had played the part of Alexander while returning in order to mislead people that Alexander was alive. There are examples in the history like that of Genghis Khan[26] where the armies had concealed the death of their leader till they reached the safer place.

The third reason in favour of this theory is the strange behaviors of Greeks with the Kshudrakas and the Malvas (two states on the path of their retreat through river Indus), It seems that when the

Greeks found that they will not be able to get the path by defeating the joint army of these states, they organised a grand party to the ambassadors to these states.

Prof. Jayaswal says that the Greek writers with their palpable desire to magnify the glory of Alexander made us believe that Kshudraks and the Malvas were crushed and annihilated,but Patanjali discloses a different story[27]. Curtius has described the party in detail. Some extracts of the details provided by him says that the two nations sent hundred ambassadors, who all rode in chariots and were men of uncommon stature and of very dignified bearing. They were proud of their liberty which for so many ages they had preserved inviolate. They were entertained with shows at which wine followed and the ambassadors were dismissed to their several homes. All this does not read like the description of a crushed enemy, but rather of one whose subordinate alliance was welcomed to have a fever (i.e path).

The fourth reason favouring the theory is that, the Greek army did not return under a joint command, but in parts. The major part of army went through the sea under the command of Nearchus. If Alexander had been alive, then the army might have gone under his command. The second part of the army went under the command of Craterus. The third part remained straying in the Indus valley. Since the army did not go under a joint command, a conclusion can be derived that the officers of the army fought for their supremacy and adopted different paths to return the theory of conflict of army is also confirmed from the facts that the whole kingdom was divided in may parts in a very short time after return from India.

The last but not the least reason is that none of the Greek authors have been successful in explaining with convincing reasons the cause and exact time of death of Alexander. it is said that Alexander died of a mysterious illness. Various theories have been propounded for the cause of his death which include poisoning, sickness that followed a drinking party, or a relapse of the malaria he had contracted in 336BC and many more[28]. It is strange that people and Greek authors could not find out the cause and time of death of Alexander, whom they call all time great.

In view of the above, there remains no doubt that Alexander was killed in Dwigart by brave Dogras. Alexander is called all times great by Western authors. But on discussing the facts of his life, a question arises, as to whether he was great He had not good relations with his father and he was said to have been involved in the murder of his father. Can a person, who is responsible for the murder of his father, be great? During his life, he had no important military win to his credit except of a timid and weak king, who rushed twice from the battlefield and whose army was too willing to flee. He was a cruel and merciless person responsible for the murder of so many people. He could not win a single important battle in India and was defeated very badly by a king of a border State (Porus) with half of the strength of army, which Alexander had. Alexander was a timid person, who did not accept the proposal of Porus to fight with him alone (Dwand Yudh) to save a heavy bloodshed and hence waged an unnecessary war resulting in heavy casualities. He could not reach beyond the border States of India and had no war with the Great empire of India i.e. Magadha (Capital Patliputra) ruled by Nanda dynasty.

Evidently, it can be safely said that to call Alexander a great, the word 'greatness' has to be redefined, otherwise it will be a disgrace for all those, who have been really great.

The Greek writers had the palpable desire to magnify the glory of Alexander. Therefore, they tried to hide the truth and also tried to twist the facts. There is no doubt in the fact that India has a Golden History. During the British period, the Britishers had distorted the history of India to prove their greatness and to dominate Indians. Alexander may be the first ruler from western side, who had crossed the boundaries of India, Therefore to prove that the Western civilization was stronger and better than that of India; they magnified the glory of Alexander. This is unfortunate that after more than 60 years after

independence, we are reading and our children are being taught the same distorted history. Therefore, it is the need of the hour that the truth should be brought before world about our Golden History and Glorious Past.

References :

1.Retrieved in October, 2006 from http://en; wikipedia.org /wiki/alexander the Great.

2.Liz Waters, "Alexander the Great. The demise of the Persian empire"(2004), Athenaeum-Polak & Van Gennep, Amsterdam. pp 164-174 as retrieved in October, 2006 from http://www. livius. org/aj-al/alexander/alexander z7.html

3.Jona lendering's book has been translated into English by Liz Waters as quoted at Sr. No.2

4.Shastri Neelkanth, "Nand-Maurya-Yugeen Bharat" (1959) Motilal Banarasi Dass, Delhi-7, p 49.

5.Majumdar R.C., "Ancient India", (1964), Motilal Banarasi Dass, Delhi, Varanasi, Patna p.99

6.Bhattacharya Bhabani, "Glimpses of Indian History",(1976), Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi-110016, p.8

7.lbid.p.9

8.Oak PurshottamNagesh, "Bhartiya Itihas ki Bhayankar Bhulen" (1978), Surya Prakashan, Nai Sadak, Delhi-6, p.182

9. lbid.

10.lbid

11.Jean Filliozat, " Political history of India: From the earliest times to the 7th Century A.D.)" (Classical India Volume II) (Translated from French by Philip Spratt)(1957), Sushil Gupta (India) Limited, Calcutta-12 , p 115.

12.Oak Purshottam Nagesh, "Bhartiya Itihas ki Bhayankar Bhulen" (1978), Surya Prakashan, Nai Sadak, delhi-6, p.183

13.lbid.

14.Bhattacharya Bhabani,, "Glimpses of Indian History", (1976), sterling Publishers Pvt. Ltd, New Delhi-110016, p.10.

15.Retrieved in October, 2006 from http://en.wikipedia. org/wiki/seleucus I Nicator

16.Bhattacharya Bhabani, "Glimpses of Indian History", (1976), Sterling Publishers Pvt. Ltd, New Delhi-110016. p.10

17.Bodhankar S.L., " When Porus defeated Alexander", (December 4, 1994) Organisor,Veer Pratap Supllement. pp 9-10.

18. Oak Purshottam Nagesh, "Bhartiya Itihas ki Bhayankar Bhulen"(1978),Surya Pradashan, Nai Sadak, Delhi-6, p. 184.

19. Shastri Neelkanth, "Nand-Maurya-Yugeen Bharat" (1959) Motilal Banarasi Dass, Delhi-7. pp 54,60.

20. Jayaswal K.P., "Hindu Polity", (1955). The Bangalore Printing & Publishing Co. Ltd., Bangalore City. p55.

21.Agrawala Vasudeva Sharana, "Panini kalina Bharatavarsa" (1969) The Chowkhamba Vidyabhawan Varanasi-I, pp. 68, 435.

22. Savarkar V.D. "Bhartiya Itihas ke chhe Sawarnim Prishth." (Vol.I)(1967) Rashtradharam Pustak Prakashan, Lakhnaoo. pp 15-16.

23. Jayaswal K.P., "Hindu Polity", (1955), The Bangalore Printing & Publishing Co. Ltd.m Bangalore City. pp.55-56.

24. Nargas Narshingh Dass, "Sikander was killed joint armies of Kath &Sabhoti of Dogras" (17th May, 2006) Uttam Hindu.

25. Retrieved in October, 2006 from http://www .buber.net/Basque/Astro/footnode html

26.Retrieved in October, 2006 from http://en.wikipedia.org /wiki/Genghis Khan.

27. Jayaswal K.P., "Hindu Polity". (1955) The Bangalore Printing & Publishging Co. Ltd., Bangalore City. p. 59.

28. Retrieved in October, 2006 from htt://en. wikipedia.org /wiki/Alexander the Great.

एक राष्ट्र के इतिहास में ऐसे भी युग आते हैं कि विधाता उसके सम्मुख एक ही लक्ष्य रख देता है जिसके लिए सब कुछ चाहे वह अपने आप में कितना ही उच्च्य और महान् क्यों न हो , बलिदन कर देना पड़ता हैं। ऐसा ही समय अब हमारी मातृभूमि के लिए आ गया हैं इस समय उसकी सेवा से अधिक प्यारी हमारी कोई चीज नहीं , अन्य जो कुछ भी है उसे उसी लक्ष्य की ओर ले चलना है। यदि तुम्हें अध्ययन करना है—मातृभूमि के लिए अध्ययन करो। अपने देह मन और आत्मा को उसकी सेवा के योग्य बनाओ। अपनी आजीविका कमाओ , इस भावना से कि तुम देश के लिए जी सको। ज्ञानार्जन करो—जिससे मातृभूमि की सेवा करें। काम करो—जिससे कि वह फले फूले। कष्ट सहो ताकि वही खुशी मनाए।

— श्री अरविन्द

विश्व विख्यात इतिहास महापुरुष परशुराम

● डॉ० ओ० पी० शर्मा

पितृभक्त, पराक्रमी, मातृस्नेही, तेजस्वी, तपस्वी एवं परमयोगी इतिहास महापुरुष परशुराम एक ऐसा महानायक है, जिसने समाज को कई व्यवस्थाएँ प्रदान की हैं। समाज को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए इस महानायक के योगदान को इतिहास में कम नही आंका जा सकता। समाज के प्रत्येक वर्ग में नैतिक गुण, कर्मवाद तथा आत्मिक सिद्धान्त स्थापित करने में इस महापुरुष की इतिहास में विशेष भूमिका रही है। तीर्थों की स्थापना कर सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का कार्य जिस दूरदर्शिता से परशुराम ने किया, वह अद्वितीय है। समाज में धर्म की स्थापना इस महापुरुष का परम उद्देश्य था। भारतीय इतिहास परम्परा इसी कारण परशुराम को श्री विष्णु भगवान का छठा अवतार मानती है। विष्णु पुराण के अंशावतार कथानक से इस आशय की पुष्टि होती है–

"जमदग्निर् इक्ष्वामकु वंशोद्भवस्य रेणोस् तनयां रेणुकाम
उपयेमे तस्यां च अशेषक्षत्रवंशहन्तारम् परशुराम
सञ्ज्ञम् भगवतः
सकल लोक गुरोर् नारायणस्य अंशं जमदग्निर् अजीजनत्
(वि.पु.४.७.१४)

काल

परशुराम के काल को निर्धारित करने के लिए भारतीय कालगणना के कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है। भगवान् विष्णु के अंशावतार होने के कारण परशुराम के काल के सन्दर्भ में कई धारणाएँ विद्यमान हैं। कई इतिहासकार इन्हें काल्पनिक पुरुष तथा कुछ तथ्यों के आधार पर ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। भारतीय इतिहास परम्परा में कुछ ऐसे साक्ष्य विद्यमान है कि जिनके आधार पर परशुराम एक इतिहास पुरुष के रूप में उभर कर सामने आते हैं। कालक्रम के इसी अन्तर्विभाग में वैवस्वत मन्वन्तर के उन्नीसवें त्रेतायुग में और श्रीविष्णु के छठे अंशावतार के रूप में परशुराम का जन्म हुआ। मत्स्यपुराण के निम्न पद्य से इस आशय की पुष्टि होती है–

एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्राहन्तको विभुः।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः ।। (३.४७.२१३)

कालक्रम के साथ परशुराम के जन्म को व्यवस्थित करने पर परशुराम का काल आज से ७,९४,८८,००० वर्षों के आस पास बैठता है। परशुराम के जन्म के सन्दर्भ में महाभारत में भी विवरण है। वहां उल्लेख आया है कि वसन्त ऋतु, वैशाख मास, शुक्ल पक्ष, अक्षय तृतीया शनिवार सूर्यास्त के पश्चात् रेणुका को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। यह प्रमाण भी परशुराम के जन्म को १९वें त्रेतायुग में निर्धारित करता है। परशुराम का वंश भी ऐतिहासिक है। भारतीय इतिहास में इसके कई प्रमाण विद्यमान है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १६७वें सूक्त के चतुर्थ मन्त्र में विश्वामित्र का उल्लेख जमदग्नि के साथ किया गया है–

"प्रसूतो भक्षम् अकरम् चराव् अपि स्तोमं चेदम् प्रथमः सूरिर उन मृजे।
सूते सातेन यदि आगमं वाम् प्रति विश्वामित्र जमदग्नि दमे।"

विष्णु पुराण में विश्वामित्र और जमदग्नि ऋषि के जन्म के सन्दर्भ में एक उपाख्यान आया है। यह उपाख्यान परशुराम के जीवन दर्शन को समझने के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इस उपाख्यान के अनुसार कुशाम्ब ने इन्द्र के समान पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से उग्र तप किया। इन्द्र ने इस भय से कि कहीं उसके समान प्रतापी कोई दूसरा व्यक्ति उत्पन्न न हो जाए, स्वयं ही गाधि कौशिक नाम से कुशाम्ब का पुत्र हुआ। गाधि की पुत्री सत्यवती का विवाह भृगवंश के ऋचीक नामक ब्राह्मण से हुआ। ऋचीक ने ब्राह्मण के गुणों से युक्त पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा व्यक्त की। अतः उसने एक चरू(चावल,जौ, दाल, घृत और दूध निर्मित)तैयार किया। इसी प्रकार सत्यवती की माँ ने भी क्षत्रिय गुणों से युक्त पुत्र की इच्छा प्रकट की। ऋचीक ने उसके लिए भी उन्हीं गुणों से संकल्पित दूसरा चरू तैयार किया। सत्यवती की माँ ने चरू बदलने का आग्रह अपनी पुत्री से किया। ऋचीक को बताए बिना उन दोनों ने चरू बदल कर खा लिए।

घर लौटने पर ऋचीक को जब इस घटना का पता चला तो वह अपनी पत्नी पर क्रोधित हुए। ऋषि ने अपनी पत्नी से कहा कि उसकी माता के चरू में वीरता शौर्य और बल आदि क्षत्रिय वृत्ति वाले गुणों को आरोपित किया गया था। इस प्रकार उसके चरू में शान्ति, ज्ञान, ब्रह्म और धैर्य के गुण निहित थे। परिणाम स्वरूप सत्यवती ने जमदग्नि और उसकी माँ ने विश्वमित्र को जन्म दिया। जमदग्नि का इक्ष्वाकुवंशीय रेणु की पुत्री रेणुका से विवाह किया।

रेणुका के गर्भ से ही कनिष्ठ पुत्र राम पैदा हुए। यही राम परशुराम के रूप में विख्यात हुए तथा यही परशुराम का वंश है। इस वंश के चरू आख्यान के अनुसार परिवर्तित गुण इतिहास में प्रसिद्ध है। क्षत्रियोचित गुण न केवल जमदग्नि में अपितु परशुराम के कृत्यों में भी दृष्टिगोचर होते हैं।

परशुराम के अतिरिक्त रेणुका के गर्भ से रूमण्वान, सुषेण, वसु तथा विश्वावसु नामक चार पुत्र भी उत्पन्न हुए। परशुराम बाल्यकाल से ही अस्त्र–शस्त्र, विद्याप्रेमी, वीर, त्यागी, तपस्वी एवं योग विद्या के साधक थे। धनुर्वेद की विधिवत् शिक्षा इन्होंने अपने पिता जमदग्नि से प्राप्त की थी। कंधे पर धनुर्बाण और हाथ में दिव्यपरशु लेकर ये वीरता की प्रतिमूर्ति दिखाई देते थे। विष्णु पुराण के एक उपाख्यान के अनुसार परशुराम ने गन्धमादन पर्वत पर महादेव को अपनी तपस्या से प्रसन्न किया था। महादेव ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्यपरशु प्रदान किया–

"सर्व विद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम्।
रामं क्षत्रिय हन्तारम् प्रदीप्तम् इव पावकम्।
तोषयित्वा महादेवम् पर्वते गन्धमादने।
अत्राणि वरयामास परशुम् चातितेजसम्।।"

उपर्युक्त प्रसंग में परशुराम के लिए राम शब्द आया है। वस्तुत: इनका मूल नाम राम ही था। महादेव द्वारा प्रदान किए गए दिव्य परशु के कारण रेणुका पुत्र राम परशुराम के नाम से विश्व विख्यात हुए।

अवतार के रूप में कार्य

परशुराम का जन्म एक साधारण घटना नहीं थी। भगवान विष्णु ने स्वयं परशुराम के रूप में षष्ट अवतार लिया था। वस्तुत: समाज में धर्म की स्थापना और समाज को उत्तम व्यवस्था प्रदान करने के लिए श्री विष्णु स्वयं त्रिगुणात्मक शरीर के रूप में अवतरित हुए थे। अवतार की पृष्ठभूमि में भी धर्म की स्थापना का संकल्प ही दृष्टिगोचर होता है। इस सन्दर्भ में परशुराम के जीवन की तीन घटनाएं महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम परशुराम के हाथों माता का वध और उनका पुनर्जीवन, द्वितीय हैहयवंशी सहस्रार्जुन और तृतीय उसके सहयोगी क्षत्रियों को २१ बार भयंकर युद्ध में परास्त करना, जाने–अनजाने किए गये पाप कर्मों के प्रायश्चित के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र का भ्रमण और पवित्र धार्मिक स्थलों की स्थापना करना। परशुराम के जीवन के ये तीन पड़ाव उनके जीवन दर्शन की सम्पूर्ण कहानी स्वयं ही अभिव्यक्त करते हैं।

माँ रेणुका का वध और पुनर्जीवन

प्रथम घटना के कथानक के अनुसार माता रेणुका अपने आश्रम से जल लेने यमुना के तट पर गयीं। उस समय गन्धर्वराज चित्ररथ अप्सराओं के साथ वहां जलक्रीड़ा कर रहा था। माता रेणुका के हृदय में चित्ररथ के साथ विहार करने का भाव जागृत हुआ। ऋषि जमदग्नि दिव्य शक्ति से रेणुका के मन के भाव को जान जाते हैं। अनैतिक भाव का दण्ड ऋषि ने अपनी पत्नी के प्राण दण्ड के रूप में निर्धारित किया।

प्राण दण्ड के इस कार्य के लिए ऋषि ने ज्येष्ठ पुत्र से लेकर सभी को आज्ञा दी। अग्रज चारों पुत्र इस कार्य को न कर सके। अन्त में परशुराम को आज्ञा दी गई। परशुराम पिता को गुरु की तरह मानते थे। यही नहीं वे जमदग्नि की भस्म करने वाली शक्ति को भी जानते थे। अत: परशुराम ने अपनी माता रेणुका का मस्तक काट दिया। यही नहीं पिता की आज्ञा से चारों भाईयों के मस्तक भी धड़ से पृथक् कर दिए। पिता जमदग्नि ने परशुराम द्वारा किए गए कृत्य से प्रसन्न होकर उसे मनवांछित वर प्रदान करने की इच्छा प्रकट की। परशुराम ने तुरन्त पिता से अपनी माता और भाइयों को पुनर्जीवित करने का वर मांगा और उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें पिछली घटनाएँ याद न रहे। जमदग्नि धर्मज्ञ पुत्र के भाव को समझते थे। अत: तथास्तु कहकर वर प्रदान किया। पूर्ववत् स्वरूप में माता और भाई पुनर्जीवित हो उठे। उन्हें पूर्वकालिक घटनाओं का स्मरण न रहा।

मातृ हत्या परशुराम के जीवन को उद्विग्न करने वाली घटना थी। इस घटना के पीछे भी धर्म संस्थापना के उद्देश्य निहित थे। उद्विग्न मन को शान्ति प्रदान करने और मातृ हत्या के पाप के शमनार्थ परशुराम ने भगवान शंकर की घोर तपस्या की। १२ वर्ष घोर तपस्या करने के उपरान्त परशुराम की आत्मा तुष्ट हुई। इसी बीच देवासुर संग्राम प्रारम्भ होता है। इस घटना के अन्तर्गत असुरों को देवताओं ने स्वर्ग लोक से निकाल दिया। देवता शिव के पास गए। शिव ने हिमाद्रि पर्वत पर तपस्या में रत परशुराम के पास जाने को कहा। महाभारत में इस आशय की पुष्टि निम्न पद्य से होती है–

अस्त्रे शस्त्रे च शास्त्रे च न मत्तोऽप्यधिको भवेत्।
लोकेषु मां रणे जेता न भवेतप्रसादत:।।

शिव ने असुरो के साथ युद्ध के लिए परशुराम को असंग शुभाश्व सुध्वज कपला रथ, अक्षय शरवाला तुणीर, अमर विजय वाला धनुष एवं चोट सहने वाला कवच प्रदान किया। अतुल पराक्रम से युद्ध में असुरों को परास्त कर परशुराम ने देवताओं को पुन: स्वर्ग में स्थापित किया।

सहस्रार्जुन वध और इक्कीस बार क्षत्रियों से युद्ध

देवासुर संग्राम की घटना के उपरान्त हैहय वंश का राजा सहस्रार्जुन चतुरंगिणी सेना लेकर मृगया हेतु विन्ध्याद्रि में प्रविष्ट हुआ। वन में भ्रमण करते हुए राजा को ऋषि जमदग्नि का आश्रम उपलब्ध हुआ। कुछ समय तक विश्राम करने के उपरान्त राजा जाने को उद्यत हुआ। ऋषि ने आश्रम में ही राजा को रुकने के लिए कहा। राजा ने चतुरंगिणी सेना के लिए भोजन –पानी की व्यवस्था की बात कही। ऋषि व्यवस्था करने के लिए तैयार हो गए।

ऋषि जमदग्नि ने अतिथि भाव से ओतप्रोत होकर कामधेनु के प्रताप से राजा और उसकी चतुरंगिणी सेना का आदर सत्कार किया राजा दुर्लभ खाद्य सामग्री, आवास गृहों और आमोद–प्रमोद की सामग्री देखकर दंग रह गया। राजा ने लोभवश कामधेनु को अपने साथ ले जाने के लिए अपने मन्त्रियों के पास प्रस्ताव भेजा। ऋषि ने इसे अस्वीकार कर दिया। क्रोधित राजा ने बलपूर्वक कामधेनु को ले जाने के लिए सेना को आदेश दिया। ऋषि गाय के गले में लिपट गए। सैनिकों ने जमदग्नि का क्रूरतापूर्ण वध कर डाला। अपने पति का मृत शरीर देखकर रेणुका ने २१ बार अपनी छाती को पीटा और अपने पुत्र परशुराम को याद किया। परशुराम उस समय अकृतव्रण के साथ समिधा लाने जंगल गए हुए थे। योगबल से माता के क्रन्दन को सुनकर परशुराम आश्रम लौटे। अपने पिता के विषय में कार्तवीर्य सहस्रार्जुन द्वारा किए गए घृणित कृत्य के परिणाम स्वरूप २१ बार क्षत्रिय संहार की घोर प्रतिज्ञा की।

कार्तवीर्य सहस्रार्जुन अपनी राजधानी माहिष्मती लौट गया। माहिष्मती हैहय राजवंश की महत्त्वपूर्ण राजधानी मानी जाती थी। तत्कालीन हैहय वर्तमान गुजरात के नर्मदा नदी के आस–पास एक बलशाली राजवंश था। परशुराम ने अपनी भीषण प्रतिज्ञा को कार्यान्वित करने के लिए अयोध्या, विदेह, काशी, कान्यकुब्ज और वैशाली के राजाओं का एक संघ बनाया और स्वयं उसके नेता बने।

संभवत: यह युद्ध भी बहुत भयंकर था। कुछ तथ्य इस युद्ध को २१ दिन तक चलने वाला युद्ध प्रमाणित करते है। यही नहीं हैहय राजा सहस्रार्जुन के योद्धाओं को परशुराम ने २१ जगह इक्कीस बार

हराया।

महाभारत के अनुशासन पर्व में जमदग्नि पुत्र राम द्वारा इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित करने की जिस घटना का उल्लेख है, वह भी हैहय वंश के क्षत्रिय योद्धाओं को पृथक–पृथक स्थानों पर पराजित करने से ही सम्बन्धित है–

"जामदग्न्येन रामेण तीव्र रोषान्वितेन वै।
त्रिसप्तकृत्व: पृथ्वी कृता नि:क्षत्रिया पुरा।
ततो जित्वा महीं कृत्स्नां रामो राजीव लोचन:।
अजहार क्रतुंवीरो ब्रह्म क्षत्रेण पूजितम्।
वाजिमेधम् महाराजा सर्वकाम समन्वितम्।"

इस प्रसंग में इक्कीस बार क्षत्रियों से पृथिवी को रहित करना और उसके उपरान्त अश्वमेध यज्ञ करना उन इक्कीस युद्धों की ओर संकेत है। इतिहास में हैहय योद्धाओं के साथ भयंकर युद्धों के उपरान्त ही परशुराम ने अश्वमेध यज्ञ किया था। ये प्रमाण उपर्युक्त तथ्यों को सिद्ध करते हैं। इस पृथ्वी पर से २१ बार क्षत्रियों का संहार इन्हीं इक्कीस युद्धों का वर्णन लगता है। जो इन युद्धों की भीषणता का प्रतीक है। परशुराम द्वारा निर्मित संघों का हैहय क्षत्रिय वंशों के योद्धाओं के साथ युद्ध के प्रमाण आज भी इन कुलों के कथानकों और वंश परम्पराओं में विद्यमान हैं।

प्रायश्चित एवं धार्मिक स्थलों की स्थापनाएँ

परशुराम के जीवन में मातृ हत्या और हैहय क्षत्रिय कुलों के साथ इक्कीस बार भयंकर युद्धों में क्षत्रियों के संहार का अन्तर्द्वन्द्व इन दोनों घटनाओं के उपरान्त भी विद्यमान रहा। वस्तुत: परशुराम एक ऐसा चरित्र है, जिसने समाज में धर्म की मर्यादाओं की स्थापना के लिए संघर्ष किया। मातृ हत्या में वह जहां पितृ आज्ञा का अनुकरण करते हुए दिखाई देते हैं, वहीं माँ की ममता को पूर्ण अधिमान देते हुए भी दिखाई देते हैं। अपने पिता द्वारा दिए जाने वाले वर के रूप में सर्वप्रथम परशुराम अपनी माँ का पुनर्जीवन और घटनाओं की विस्मृति मांगते हैं। जीवन में नैतिक मर्यादाओं का आदर्श परशुराम का सर्वप्रथम कार्य था। यही नहीं पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, अच्छाई–बुराई, गुण–अवगुण, सत्य–असत्य के द्वन्द के साथ संघर्ष भी परशुराम के जीवन चरित से झलकता है। व्यक्ति के जीवन दर्शन के निर्माण में इनकी विद्यमानता को परशुराम ने अधिमान दिया। सामाजिक व्यवस्थाओं में धर्म और आदर्शों की स्थापना के लिए ब्राह्मण होते हुए भी भयंकर युद्ध करना परशुराम के जीवन दर्शन के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं।

परशुराम द्वारा किए गए उपर्युक्त कर्मों का चिन्तन मात्र करने से उनके जीवन के शौर्य पक्ष सामने आते हैं। परन्तु प्रायश्चित पक्ष के अन्तर्गत सम्पूर्ण राष्ट्र में धार्मिक स्थलों की स्थापनाएँ उनके जीवन दर्शन के कोमल भावों एवं गुणों की अभिव्यक्ति के भी प्रमाण हैं। कार्तवीर्य सहस्रार्जुन के निरंकुश, धर्मविरूद्ध, अनैतिक और असत्यपरक शासन के विरुद्ध परशुराम का फरसा आग उगलता है। परशुराम का यह युद्ध धर्म और मर्यादाओं के स्थापानार्थ इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण युद्ध है। यहां परशुराम सत्य और धर्म के पक्ष में खड़े दिखाई देते है। इसके अतिरिक्त परशुराम अपने जीवन को प्रायश्चित की आँच में तपाते हुए भी समाज के समक्ष आते हैं। परशुराम ने भयंकर युद्ध के उपरान्त अपना आश्रम छोड़ा और भ्रमण करते हुए सुदूर केरल तक पहुँचे। मन में प्रायश्चित का भाव लिए वे वन, पर्वत मरुस्थल तथा सागर तटों में भ्रमण करते रहे। पूर्व में आसाम और अरुणाचल, उत्तर में हिमालय और पश्चिम की नर्मदा–ताप्ति की घाटियों में भ्रमण कर परशुराम ने विभिन्न धार्मिक स्थलों का निर्माण किया और कई सामाजिक व्यवस्थाएँ स्थापित की।

मातृहत्या की घटना से उद्विग्न मन वाले परशुराम ने तप योग्य स्थलों का अन्वेषण प्रारम्भ किया। पुन: वे भगवान शंकर की शरण में गए। शंकर ने उन्हें सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने की आज्ञा दी। इसी कड़ी में परशुराम आसाम का भ्रमण करते हुए ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे गए। जहां पर उन्होंने एक कुण्ड में हस्त प्रक्षालन किया और यहीं पर इनकी मानसिक बेचैनी ठीक हुई। आज भी वह कुण्ड विद्यमान है। यहीं पर परशुराम ने १२ वर्ष घोर तपस्या की और अपना आश्रम स्थापित किया। हिमाचल के सिरमौर जिला के रेणुका तालाब का कथानक इतिहासकारों ने यहीं से जोड़ा है। आज भी रेणुका तीर्थस्थल सम्पूर्ण भारत वर्ष में प्रसिद्ध है।

इसके उपरान्त शिव के प्रसन्न होने पर परशुराम पृथ्वी के सम्पूर्ण तीर्थों की ओर प्रवृत्त हुए। कहा जाता है कि भारत भ्रमण के क्रम में वे उत्तर काशी, प्रयाग, फरास, नर्मदा तटीय क्षेत्र लोहराया समुद्रवर्ती द्वीप चम्पारण्य क्षेत्र, पुष्कर तीर्थ, गोवा प्रान्तस्थ कैवल्यपुर, बंगलादेश के पास ब्रह्मपुत्र तीर्थ, इस के निकट अथिरल सरोवर, हिमाचल के काव, मुमेल, तत्तापानी, निरमण्ड, निरथ, शनेरी, डानसा, लालसा तथा शिंगड़ा और सिरमौर के रेणुका आदि तीर्थ स्थलों में गए। इस प्रकार इन क्षेत्रों में उपवास, तप, योग और तर्पण कर उन्होंने न केवल भारत वर्ष में अपितु पृथ्वी के कई अन्य भागों मे भी धर्म स्थल स्थापित किये। कहा जाता है कि परशुराम ने १०८ मुख्य तीर्थों और देवस्थलों की विधिवत् स्थापना की।

हिमाचल के निरमण्ड तथा रेणुका जैसे तीर्थ स्थलों की स्थापना के उपरान्त परशुराम का इन क्षेत्रों में आगमन कई बार हुआ। परशुराम योगी थे, अत: दीर्घ आयु और तप के बल पर उन्होंने पृथ्वी के सम्पूर्ण पवित्र स्थलों का भ्रमण किया और कई पीठ स्थापित किए। कुल्लूत जनपदीय निरमण्ड और रामपुर क्षेत्रीय चार ठहरी तथा पाँच स्थानों की लोक परम्पराओं एवं वंश दर वंश स्मृत लौकिक आख्यानों में इतिहास के ऐसे सूत्र विद्यमान हैं, जो परशुराम को विश्वविख्यात ऐतिहासिक पुरुष स्थापित करने की ओर संकेत करते हैं। निरमण्ड की परशुराम कोठी इतिहास स्रोत का प्रमुख आधार है। इस क्षेत्र में 'भूण्डा' यज्ञ परशुराम द्वारा स्थापित ऐतिहासिक कृत्यों का आज भी जीवित प्रमाण है। इसी प्रकार करसोग जनपदीय काव तथा मुमेल एवं सिरमौर जनपदीय रेणुका ताल के लौकिक आख्यान परशुराम सम्बन्धी कई ऐतिहासिक प्रमाणों को उद्घाटित करते हैं। कहा जाता है कि १२ वर्ष निरमण्ड में परशुराम ने पुन: तप किया और भडौजी एवं भूण्डा नामक यज्ञ सम्पादित कर वे महेन्द्राचल पर्वत की ओर गए। उनके मन में उस समय विचार आया कि विजय की हुई सम्पूर्ण पृथ्वी तो उन्होंने दान में

दे दी है। अत: तप के लिए कौन सा स्थान स्थायी रूप से निर्धारित किया जाए। इसी विचार से परशुराम ने पश्चिमी घाट और अरबसागर के मध्यवर्ती भड़ौच एवं दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक की भूमि समुद्र से मांगी। परमतपस्वी और परमयोद्धा परशुराम को समुद्र ने ये स्थान प्रदान किए। इन्हें आज भी यहां के स्थानीय लोग 'परशुराम क्षेत्र' कहते हैं। इसी परशुराम क्षेत्र में इन्होंने मुक्ति क्षेत्र, रजतपीठ, कुमाराद्रि, कुम्भकाशी, गोकर्ण मुकाम्बिका तथा ध्वजेश्वर शंकर नारायण ये सात मुक्ति क्षेत्र स्थापित किए। स्वयं महेन्द्राचल पर्वत पर तप में बैठ गए। इस प्रकार विभिन्न तीर्थ स्थलों एवं तप:स्थलों की स्थापना कर परशुराम ने जहां समाज के उत्थान के लिए कई व्यवस्थाएँ प्रदान की वहीं पृथ्वी को एक सूत्र में बांधने का भी सफल प्रयास किया। अत: विष्णु के इस अंशावतार ने निश्चय ही इस पृथ्वी पर धर्म की स्थापना के मूलभूत सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार परशुराम इतिहास की एक अमूल्य धरोहर हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची —

१. ऋग्वेद; (सम्पा) विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधुआश्रम होशियारपुर, सं० २०२०.

२. ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाएँ; पद्मचन्द्र कश्यप, हिमाचल पुस्तक भंडार, सरस्वती भंडार, गांधीनगर, दिल्ली, १९९९

३. भारत महान; आचार्य चतुरसेन, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली, १९८५

४. भारतीय कालगणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप; (सम्पा०)डॉ० रविप्रकाश आर्य, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, बाबा साहेब आप्टे स्मृति भवन, केशव कुंज, झण्डेवालान, दिल्ली।

५. मत्स्यपुराण; डॉ० चमन लाल गौतम, संस्कृति संस्थान बरेली, उ०प्र०, १९७१

६. महाभारत (आदि, वन, द्रोण, अनुशासन पर्व); (सम्पा) पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर; स्वाध्याय मण्डल पारडी (जिला बलसाड़), सन् १९९९

७. वायुपुराण; डॉ० चमन लाल गौतम संस्कृति संस्थान बरेली, उ०प्र०, १९६९

८. विष्णुपुराण; (अनु०)श्री मुनी लाल गुप्त, गीताप्रेस गोरखपुर, सं०२०६४

प्राध्यापक–संस्कृत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

भारतीय इतिहास की गौरवशाली परम्परा

शेष भाग पृष्ठ ५ का

विकास के लिए लक्ष्मी पुत्रों तथा सरस्वती पुत्रों दोनों की आवश्यकता है। जैसा उज्ज्वल हमारा भूतकाल था ऐसा ही उज्ज्वल हमारा भविष्य होगा। इस दृष्टिकोण से यह शोध संस्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। भावी पीढ़ी इस शोध संस्थान के आईने से अपने गौरवशाली इतिहास का अवलोकन

'राष्ट्र : विराट् पुरुष'

भारत में अनेक धर्म, अनेक जातियां, अनेक भाषायें और अनेक पंथ हैं। लोग कहते हैं कि कैसी अजीब खिचड़ी है? मैं कहता हूँ यह खिचड़ी नहीं, वटवृक्ष है। रवीन्द्रनाथ ने तो इसे महासागर की उपमा दी। महासागर पर जिस प्रकार अनन्त लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार यहाँ पर भी अनेक मानव—समाज आन्दोलन करते रहते हैं। यह हमारा वैभव है। भगवान अगर मुझे हाथ, पाँव, कान, नाक, आँखे इस प्रकार विविध अवयव न देकर केवल एक मांस—पिण्ड ही बना देता तो मेरी क्या हालत होती? इसके विपरीत यदि मेरे से विविध अवयव आपस में लड़ने लग जायें तो मरी क्या हालत होती?

मुझे शक्तिदेवी की याद आती है। शक्ति देवी की अनेक भुजायें होती हैं, परन्तु हृदय एक ही होता है। विराट् पुरुष के हजारों हाथ कहे गए हैं, परन्तु हृदय एक ही बताया गया है। इसी प्रकार हमारा सबका हृदय एक ही होना चाहिए, यदि ऐसा न हुआ तो यह स्वराज्य चला जायेगा।

— आचार्य विनोबा भावे

विश्व के एक आदर्श सम्राट: राजा बाण वट्ट

• डा० रमेश शर्मा

इतिहास में अनेक व्यक्तित्व, तथ्य तथा घटनाएँ कलमबद्ध होकर लोकप्रसिद्ध एवं विख्यात होती हैं। इतिहास उन्हें धरोहर के रूप में सुरक्षित करता है तथा इस विरासत को उत्तरोत्तर पीढ़ियों को सौंपता है जो अध्ययन एवं विश्लेषण द्वारा किसी भी समाज का मार्ग प्रशस्त करती रहती है। जाने अनजाने कुछ तथ्य या व्यक्ति कलम की परिधि से बाहर रह जाते हैं। जानबूझ कर इन्हें परिधि पर रखना इनके तथा समाज के साथ अत्याचार है और अनजाने में ऐसा हो जाए तो वह अन्याय है। ऐसा इसलिए है कि ये युगप्रवर्त्तक चरित्र समाज का पथ आलोकित करते हैं। इनका लोक जीवन से बाहर रहने का अभिप्राय इनके आदर्शों से मानवता को वंचित करना होता है। इससे भी बढ़कर एक अलग प्रकार की परिस्थिति का निर्माण होता है जब कि ये पात्र लोक मानस में परम्परा के रूप में विद्यमान रहते हैं चाहे इतिहास की लेखनी ने इन्हें आत्मसात न किया हो। ऐसा ही एक इतिहास का पात्र है राजा बाण वट्ट जो त्रिगर्त की राजवंश परम्परा के आदि पुरुषों में नगरकोट (कांगड़ा) का अत्यन्त लोकप्रिय शासक था। आश्चर्य होता है कि कांगड़ा जनपद एवं समीपवर्ती क्षेत्रों में इसकी वीरगाथाएँ अभी भी अक्षुण्ण हैं। हालांकि लिखित तथ्य तलाश करने में कठिनाई आती है। इस महापुरुष का जीवन चरित प्रमाणों पर आधारित तथ्यों से समाज के सामने आए तथा उत्तरोत्तर शोधाध्ययन का विषय बने, इसके लिए कुछ तथ्यों को इस आलेख के माध्यम से समेटा जा रहा है।

त्रिगर्त के राजा बाण वट्ट का विशाल साम्राज्य था। यह साम्राज्य धर्म और अध्यात्म का केन्द्र होने के साथ—साथ वैज्ञानिक उन्नति में आज के आविष्कारों से कहीं आगे उन्नत एवं विकसित था। यहाँ के राजा बाणवट्ट का यह असली नाम नहीं था। वह अत्यन्त दानी प्रवृति का शासक एवं न्याय प्रिय था। एक बार एक संन्यासी उसके महल में भिक्षाटन के लिए आया। राजा ने हीरे जवाहारात, मोती आदि एक थाली में भेंटार्थ प्रस्तुत किए। सन्यासी ने प्रश्न किया कि "राजन क्या ये तुम्हारी कमाई के हैं? मैं वही भिक्षा ग्रहण करूंगा जो तुम्हारी अपनी मेहनत की हो यदि कुछ है तो दो वरना मैं बिना भिक्षा के तुम्हारे द्वार से वापिस जाता हूँ।" राजा बड़े असमंजस में पड़ गए। उसे अपने दानी होने का अभिमान था जो चकनाचूर हुआ। संन्यासी यह कहकर चला गया कि वह बाद में आएगा तथा गरीबों के कर से बने खज़ाने का दान नही बल्कि राजा के हाथ की कमाई का दान लेगा। तब से राजा ने बाण बट्टने का काम शुरू किया तथा अपना तथा रानी का खर्चा चलाने लगा। इसी से उसका नाम बाण वट्ट प्रसिद्ध हुआ। कुछ समय के बाद सन्यासी फिर आया तथा राजा की कमाई की भिक्षा स्वीकार की तथा दिव्य आशीर्वाद दिया।

जनश्रुति है कि बाण वट्ट की रानी धर्म बल पर महल के चौबारे से आला धागे(कच्चे सूत के धागे) घड़ा बांध कर कुएं में डालती और खींचकर पानी लाती थी। एक बार राजमहल के समारोह में आमंत्रित रानियों तथा प्रतिष्ठित महिलाओं ने रानी पर फब्ती कसी कि तेरा पहनावा भिखारिन के समान लगता है। रानी ने निराश स्वर में राजा बाण वट्ट से यह घटना बताई तथा उनसे आभूषण तथा अलंकरण की अन्य सामग्री उपलब्ध कराने का हठ किया। राजा ने समझाया कि मैं तो बाण बाट कर अपनी गृहस्थी चलाता हूँ मेरे पास ये प्रसाधन नहीं हैं लेकिन रानी अपने हठ पर कायम रही। विवश होकर राजा ने अपने मित्र रावण से यह चर्चा की तथा उसे यह सामान उपलब्ध कराने का निवेदन किया जिसे स्वीकार कर उसने आवश्यक सामान राजमहल में भेजा। ऐसा भी माना जाता है कि राजा ने नौ लाख पैसों का हार बनाने के लिए राज्य के नौ लाख परिवारों को एक—एक पैसा कर लगवाया गया था। रानी हार पहनकर बहुत प्रसन्न हुई तथा अन्य औरतें भी प्रभावित हुई। अगली प्रात: जब सूत से उसने अपने कुएँ में पानी उठाने के लिए घड़ा डूबोआ तो सूत टूट गया। अमंगल और अपशकुन का संकेत समझकर भागते हुए उसने यह बात राजा को बताई। राजा हँसे तथा कहा कि मैंने पहले ही तुझे समझाया था कि तेरी तप साधना में शृंगार की कोई आवश्यकता नहीं है। तूने हठ किया तो उसका परिणाम भी सामने है। तुरंत रानी ने सजावट का सामान वापिस रावण को भिजवा दिया।

काल विश्व में सर्वप्रभावी है। यहां जो कुछ भी घटित होता है वह काल के अनुसार होता है। अत: इतिहास और काल का परस्पर अंगागी संबन्ध है। काल यदि विम्ब है तो इतिहास उसका प्रतिबिम्ब है। जो काल है वह इतिहास हैं और जो इतिहास है वह काल है। अत: भारत के प्राचीन आदर्श सम्राट बाण वट्ट के जीवन चरित्र को काल तत्व के परिपेक्ष्य में प्रतिपाद करना आवश्यक है।

काल तत्व की अवधारणा की जानकारी जिस शास्त्र से मिलती है वह कालगणना है। अत: इस काल तत्व पर आधारित युगों की वैज्ञानिक भारतीय कालगणना के अनुसार वर्तमान में वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। एक मन्वन्तर का काल ३०,८४,४८००० वर्ष होता है। प्रत्येक मन्वन्तर की समाप्ति पर सृष्टि क्रम बदलता है। पुरानी सृष्टि समाप्त हो जाती है और नया मनु नयी सृष्टि करता है। यथा वर्तमान वैवस्वत मनु के पहले चाक्षुष मनु थे। उनका काल समाप्त होने पर सृष्टिक्रम बदला। पुरानी सृष्टि समाप्त हो गयी और नये मनु वैवस्वत ने नयी सृष्टि की। अत: हम सभी वैवस्वत मनु की नयी संताने हैं। हमारा अस्तित्व १२,०५,३३,१०८ वर्ष का है।

वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारंभ में दो राजवंशों की स्थापना हुई—सूर्यवंश और चन्द्रवंश। पहले वंश की स्थापना वैवस्वत मनु ने स्वयं की और दूसरे वंश की संस्थापक वैवस्वत मनु की पुत्री इला थी।

शेष भाग पृष्ठ ३२ पर

आस्था दीप

टौणी देवी मन्दिर

• स्व. डा. लश्करीराम राठौर

टौणी देवी मन्दिर के इतिहास के विषय में सभी पक्षों के प्रमाण किंवदंतियों में कहे जाते हैं तथा यह प्रमाण स्पष्ट मौजूद भी हैं।

सर्वप्रथम टौणी देवी के सारे क्षेत्र का भौगोलिक निरीक्षण करने से यहां के बने खेत–खलियान इस बात का प्रमाण हैं कि आज से बहुत पहले इस क्षेत्र की जनसंख्या आज से भी अधिक थी। तभी यह खेत बनाये गये हैं। अब यह समय कब तथा कौन–सा हो सकता है? महाभारत काल में यह क्षेत्र आबाद था। इस का प्रमाण है गवारडू गांव के मन्दिर की देवी जिसे हिडिम्बा देवी के नाम से पुकारा जाता है। गसोता के पानी के स्रोत को भी भीम गंगा कहा जाता है। गांव वारीं में अज्ञातवास के समय में पाण्डवों की व्यास दरिया की धारा मोड़कर वाकर खड्ड से लाकर वारीं मन्दिर के पास घराट चलाने की योजना थी। प्रमाण में घराट के वट्ट–कियोली–विजू आज भी मौजूद हैं। जिन्हें भीम बट्ट के नाम से पुकारा जाता है। कहा जाता है कि पाण्डव अज्ञातवास में अपना कार्य एक रात के भीतर पूरा कर के प्रातः होने से पहले आगे निकल जाते थे। बारी गांव की कोई औरत रात के चौथे पहर में धान कूटने लगी। पाण्डवों को लगा सवेरा होने वाला है, वे आगे निकल गए, यहां न घराट चल सका न व्यास नदी आ सकी। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि टौणी देवी का पाण्डवों से सम्बन्ध हैं। यहां पाये जाने वाले भीम के घराट के बट्टों को कई बीमारियों को दूर करने के लिए पूजा जाता है। जैसे चबंल–ददरी के रोगी, हाथों पर मस्सों के रोगी अपनी त्वचा को कुछ देर इन बट्टों से रगड़ते हैं तथा उनके रोग दूर हो जाते हैं। पहले पुराने मलेरिया के रोगी भी यहां ठीक होते थे ऐसा लोग मानते हैं।

टौणी देवी का चौहान वंश से सम्बन्ध

चौहान वंशज परम्पराओं व किंवदन्तियों के अनुसार कहा जाता है कि टौणी देवी में आज से सैंकड़ों वर्ष पूर्व जबकि दिल्ली के महाराज पृथ्वीराज चौहान मुगल आक्रमणकारियों से हार गये और दिल्ली में मुगलों का अधिपत्य हो गया तो मुगलों ने दिल्ली ही नहीं अपितु सारे भारत के राजा महाराजाओं के सोने चांदी और रत्नों के भण्डारों को लूटना शुरू कर दिया।

राजनैतिक प्रथा के अनुसार धन वैभव लूटने के बाद भारत की संस्कृति को विनष्ट करने की योजना बनाई। इस मुख्य योजना में जो लोग मुस्लिम धर्म अपना लेते थे, उसका मुगल शासन आदर और सम्मान करता था और जो व्यक्ति इसका विरोध करते थे उनको अपमानित करने के लिए उनकी बहू बेटियों के साथ अभद्र व्यवहार करते थे। ऐसे समय निष्ठावान लोगों ने देश और धर्म पर आई विपत्तियों को ध्यान में रखते हुए दिल्ली से दूर दराज के विकट और भयंकर जंगलों में अपने परिवारों सहित जाने की योजना बनाई। इसी योजना में चौहान वंश के बारह भाईयों का एक परिवार टौणी देवी में आया। इन बारह भाईयों ने यहां पर बारह ग्राम बसाए और इन्होंने वारी का नौण बनवाया। जिस स्थान पर यह बारह भाई आरम्भ में आकर ठहरे, वह स्थान बारी कहलाया और फिर यहां बसे गांव का नाम बारीं पड़ा।

टौणी देवी स्थान चुनने में उन्होंने तत्कालीन भौगोलिक परिस्थियों को ध्यान में रखते हुए तीन खड्डों के केन्द्र बिन्दु को प्रमुख मानकर (बाक्कर खड्ड, पुंग खड्ड, गसोती खड्ड) भवन निर्माण की योजना बनाई। इसके लिए अपने कुल पुरोहित के सुपुत्र से पूर्णतः शास्त्रानुसार शुभ मुहूर्त निकलवाया।

किसी कारणवश मुख्य कुल पुरोहित नहीं चाहता था कि मेरे यजमान पुनः मुगलों से संग्राम करें। अतः उसने राज भवन के शिलान्यास मुहूर्त में जान बूझकर विघ्न डाला। कहते हैं कि मुहूर्त पुरोहित पुत्र ने तो ठीक शास्त्रों के अनुसार निकाला। शुभ मुहूर्त में उस समय की परम्परा के अनुसार स्तम्भ भी गाड़ दिया गया। स्तम्भ गाड़ते ही उस समय स्तम्भ से दूध टपका। जब पुत्र ने पुरोहित(अपने पिता) को यह सूचना बताई तो वह नाराज भी हुआ तथा मुहूर्त बदलने के लिए उसी वक्त अपने यजमान के घर गया। उसी खम्बे को थोड़ा मोड़ देने का उचित मुहूर्त पिछली रंजस या फिर मुग़लों के भय से बदल दिया। खम्बे को हिलाते ही उसी वक्त रक्त की कुछ बून्दें गिरी। यज़मान समझदार था। जब इसका कारण पूछा तो कहा कि पहले मुहूर्त में खम्बा गाय के स्तनों पर आ जाने से दूध निकला था अतः अब यह दुर्गा भवानी की कृपा से बकरे के सिर पर गया है। इसी कारण से रक्त निकला है। पंडित बता कर चला गया पर मुखिया इसे ठीक नहीं समझ रहा था। उसी दिन इनके घर बच्चे का जन्म दिन मनाने के लिए बच्चे का मामा आया हुआ था। हवन की सामग्री के लिए कहीं दूर गया तथा वहीं उसकी गिरकर मृत्यु हो गयी। क्रोधित मुखिया ने सारे परिवार तथा पुरोहित को बुलाकर एक आदेश दिया कि आज के बाद कोई भी सदस्य इन पुरोहितों को घर में किसी भी शुभ या अशुभ कार्य में नहीं बुलायेगा।

विपदाएं कभी भी अकेली नहीं आती। अपना राज्य छोड़कर विकट जंगलों में जब इस परिवार के सदस्य भगवान के आश्रय से गुजारा कर रहे थे। पुरोहित की बात दिल के घाव को और भी गहरा कर रही थी। घर आये मेहमान की मृत्यु के बाद घर की सभी स्त्रियों ने दुःखी मन से अपनी ननद जो कि सभी १२ भाइयों को एक साक्षात देवी रूप बहन, जो भगवान की पूरी भक्त थी, दुर्गा और सरस्वती की उपासक थी तथा देखने में भी अति सुन्दर थी। सभी भाई

उसे देवी की भान्ति पूजते थे, को कहा कि यदि तू न होती तो शायद हमें यह दिन न देखने को मिलते। बारह भाईयों की यह देवी रूप बहन कान से बहरी थी। बहरी को स्थानीय बोली में टौणी कहते हैं। अत: इस का नाम टौणी देवी था। भाभियों का उलाहना सुनने पर और परिवार के दु:ख को देखकर टौणी देवी आज के मन्दिर के स्थान पर भगवान के ध्यान में अन्तर–ध्यान होकर भूमिगत हो गई। भाईयों ने उसी स्थान पर एक छोटा सा मन्दिर बनाया, जिसे उसे उन्होंने कुलजा रूप माना तथा इसे आज भी कुलजा ही माना जाता है। यहाँ विवाह से पूर्व दूल्हे को कनवाली के लिए सारे गांव की औरतें गाते बजाते मन्दिर लाकर देवी की पूजा करते हैं। देवी टोणी होने के कारण यहां पूजा में दो पत्थरों को बजाकर देवी को पुकारा जाता है तथा देवी का आह्वान किया जाता है। देवी की पूजा यहां सभी जाति व धर्म के लोग समान भाव से करते है। यहां आज हिमाचल, हरियाणा, पंजाब व यहां तक कि कुछ परिवार गुजरात से आकर देवी का पूजन करते हैं औ हर वर्ष यहां आते हैं। चौहान परिवार आरम्भ से ही इसी देवी को अपनी कुलजा मानता है।

कटोच वंश का टौणी देवी से सम्बन्ध

किवदंतियों के अनुसार कटोच वंश के महान राजा संसार चन्द की भी तपस्थली व युद्धस्थली टौणी देवी रही है। इसके कुछ प्रमाण आज भी यहां मौजूद हैं।

१) टौणी देवी के उत्तर में एक स्थान का नाम चम्बा की चौकी है। वहां एक वट वृक्ष है जिसे राजा संसार चन्द ने तोप चलाने के लिए गाड़ा था।

२) टौणी देवी के पूर्व में वारी मन्दिर के बाहर के पीपल व स्कूल के पास के पीपलों को भी तोप के गोलों से कुछ हानि हुई थी।

३) टौणी देवी के दक्षिण में पी.एच.सी. टौणी देवी के ऊपर की पहाड़ी को गस्ती रा रिड़ा नाम से पुकारते हैं। कहते हैं कि यहां राजा संसार चन्द की फौज गश्त करती थी तथा दक्षिण में गांव टपरे में एक कुड्ड है जिसे जंदरा री कुड्ड कहते हैं। राजा द्वारा अपराधियों को तथा दुश्मन फौज के जासूसों का इस कुड्ड के जंदर में फँसाकर मौत की सजा दी जाती थी।

४) समीरपुर गांव के जोल के एक चेले को राजा ने १०० घुमाऊँ की जागीर दी थी।

इसके अतिरिक्त गांव टपरे के जालफु नेगी को राजा संसार चन्द ने १०० कनाल की जागीर गांव छतरैहल की जमीन से दी थी। जालफू नेगी को राजा संसार चन्द ने अपने दरबार में हाजरी के पद पर नियुक्ति की थी। आज भी उसके परिवार वालों को हाजरी ही कहा जाता है।

यह भी किवदंति है कि जब अमर सिंह थापा ने राजा बिलासपुर व राजा चम्बा की फौजों की मदद से पहला किला महल मोरिया तोड़ा तो यह युद्ध लदरौर की माता संतोषी माता के रिड्डे पर लड़ा गया था जिसे आज भी घूड़ी रा रिड्ड़ा कहा जाता है। इसके बाद राजा संसार चन्द ने अपनी फौज के साथ टौणी देवी तक बढ़ती गोरखा फौज को रोका था। वे कुछ समय तक सुबह –शाम टौणी देवी मन्दिर में दुर्गा माता की पूजा नित्य प्रति करते थे। अत: इन सभी प्रकरणों से यह भी सिद्ध होता है कि टौणी देवी मन्दिर का सम्बन्ध राजा संसार चन्द से भी रहा था। इस के वंश के लोग भी इस मन्दिर की मान सम्मान से पूजा करते रहे हैं और अब भी करते हैं।

विश्व के एक आदर्श सम्राट: राजा बाण वट्ट

शेष भाग पृष्ठ ३० का

श्री रामचन्द्र सूर्यवंशी थे। वायु पुराण में भारतीय काल गणना के अनुसार लिखा है कि श्रीराम २४ वें महायुग के त्रेता में हुए। इस हिसाब से राम का युग आज से १,८५,८९,१०८ वर्ष पूर्व हुआ। महाराजा वाण वट्ट वैवस्वत मन्वन्तर में ही हुए। वह श्री राम और रावण के समकालीन थे। बाण वट्ट रावण का मित्र था। रावण उत्तर भारत का रहने वाला था, परन्तु उसका साम्राज्य दक्षिण अफ्रीका से लेकर फिलिपाईन्ज तक था। श्रीलंका उसका नौसैनिक अड्डा था।

एक अन्य मान्यता के अनुसार चीन क शासक ने बड़ी संख्या में अपने गुप्तचर भेजकर नगरकोट के दुर्ग की सुरक्षा व्यवस्था जांचने की कोशिश की। गुप्तचरों ने कई दिन दुर्ग में रहने के बाद राजा से कहा कि आपकी सुरक्षा व्यवस्था तो कोई नहीं है। पड़ोसी के आक्रमण का आप कैसे मुकाबला करोगे तो राजा ने प्रत्युत्तर में पूछा कि तुम अपनी सुरक्षा व्यवस्था बताओ यहाँ की बात छोड़ो। उन्होंने जानकारी दी कि उनके तीन दिशाओं में तीन बड़े दुर्ग हैं जो अमुक–अमुक स्थान पर है। उनसे हमारी सुरक्षा सुदृढ़ होती है। राजा ने कुछ नहीं कहा तथा वे अपने देश लौट गए। वहाँ जाकर उन्हें हैरत हुई कि जिस दिन राजा से तीन सुरक्षा दुर्गों की बात हुई उसी दिन तीनों पर बाण वर्षा हुई तथा उन्हें ध्वस्त कर दिया गया। राजा ने वैज्ञानिक क्षमता का परिचय देते हुए यहाँ भी अणु शक्ति के शरसंधान से यह सफलता अर्जित की यह उच्च तकनीक सामर्थ्य की परिचायक थी। इसे इच्छा भेदी बाण कहा जाता है।

बाण वट्ट इस प्रकार विश्व के एक आदर्श सम्राट थे जिसने जनता के खजाने से अपनी गृहस्थी के लिए कुछ भी नहीं लिया। जीवन भर तपस्वी के रूप में रहा। अन्त में अपने खज़ाने को जनता में बाँटकर सन्यास ले लिया। उसकी रानी ने भी इस साधना में उसका भरपूर सहयोग दिया। वही चंद्रवंशी सम्राटों का आदि पुरूष यद्यपि लिखित इतिहास में चर्चित नहीं है लेकिन लोकमानस में वे उनके गुणों और त्याग के नाम से उद्धरित किये जाते हैं तथा लोक परम्परा में निरन्तर जीवित है। इस आदर्श सम्राट के जीवन चरित्र पर और शोध तथा तथ्यान्वेषण अपेक्षित है।

नासदीय सूक्त : सृष्टि गान

• स्वामी विवेकानन्द

[ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी, द्वारा वैशाख शुक्ल ५,७,८ कलियुगाब्द, ५११० तद्नुसार १०,११,१२ मई, २००८ को शोध संस्थान परिसर में 'लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार' विषय पर राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन हो रहा है। वास्तव में भारत के ऋषि-मुनियों, चिन्तकों, दार्शनिकों और शास्त्रकारों ने सृष्टि रचना के रहस्यों के बारे में बड़ी गहराई से सोचा, समझा और चिन्तन किया है। इन ऋषि-मनीषियों की प्रज्ञा का सृष्टि रचना का विचार ही लोक परम्परा में सर्वत्र व्याप्त है।

सृष्टि रचना प्रक्रिया से सम्बन्धित ऋग्वेद का नासदीय सूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस सूत्र में कुल सात मन्त्र है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र का प्रथम शब्द नासद् है, इसीलिए इस सूक्त को नासदीय सूक्त कहते हैं। नासदीय सूक्त के तत्त्व दर्शन से स्वामी विवेकानन्द बहुत प्रभावित थे। स्वामी जी ने इस सूक्त का काव्य अनुवाद किया है और इसे सृष्टि गान की संज्ञा प्रदान की है। अद्वैत आश्रम, कोलकत्ता द्वारा प्रकाशित विवेकानन्द साहित्य दशम खण्ड के पृष्ठ १९६-१९७ में यह काव्य अनुवाद हिन्दी में सरल एवं आकर्षक शैली में छपा है जो कि मन्त्र क्रम के अनुसार निम्नलिखित रूप में है- संपादक]

तब न सत् था, न असत् ही,
न यह संसार था, न ये आकाश,
इस धुन्ध का आवरण क्या था? वह भी किसका?
गहन अन्धकार की गहराईयों में क्या था?

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

तब न मरण था, न अमरत्व ही,
रात्रि दिवा से पृथक् नहीं थी,
किन्तु गति ून्य वह स्पन्दित हुआ था,
वही चराचर था।
तब केवल वह था, जिसके परे,
कोई अन्य अस्तित्त्व नहीं,
वही चराचर था।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

तब तम में छिप कर तम बैठा था,
जैसे जल में जल समाहित हो, पहचाना न जाए,
तब ून्य में जो था,
वह तप की गरिमा से मण्डित था।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

तब मानस के आदि बीज के रूप में
प्रथम आकांक्षा उगी,
जिसका साक्षात्कार ऋषियों ने अपने अन्तर में किया,
असत् से सत् जन्मा।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जिसकी प्रकाश किरण,
ऊपर नीचे चारों ओर फैली,
यह महिमा सर्जनमयी हुई,
स्वतः सिद्ध सिद्धान्त पर आधारित,
और सर्जनशक्ति से स्फुरित।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

किसने पथ जाना, कहां अथ है,
जहां से यह फूटा?
सर्जन कहां से हुआ?
सृष्टि के बाद ही तो देवों ने अस्तित्त्व पाया,
अतः उद्भव का ज्ञान किसे प्राप्त है?

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

यह सर्जन कहां से आया,
यह कैसे ठहरा है, ठहरा भी है या नहीं?
वह सर्वोच्च आकाशों में,
बैठा हुआ महाशासक,
अपना आदि जानता है या नहीं? ाायद।

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, ध्येय की ओर बढते कदम

प्रेम सिंह भरमौरिया, सचिव, निदेशक मण्डल

भारत में इतिहास की गौरवशाली परम्परा रही है लेकिन विदेशी इतिहासकारों और विदेश अनुरागी देशी इतिहासकारों ने भारत के इतिहास में अनेक विकृतियां ला कर राष्ट्र गौरव को बहुत हानि पहुंचाई है। अत: राष्ट्र चिंतकों द्वारा इतिहास की विकृतियां दूर कर वास्तविक इतिहास को सामने लाने के प्रयत्न किए गए हैं। इससे हमारे राष्ट्र गौरव और विश्वगुरु के रूप में भारत की प्रतिष्ठा को बल मिला है।

भारत के इतिहास और लोक जीवन के सभी पहलुओं के वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक शोध संस्थान की स्थापना करना अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पथ–प्रदर्शक ठाकुर रामसिंह जी का संकल्प था। इन्हीं के सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप हिमाचल प्रदेश के जिला हमीरपुर के नेरी गांव में कलियुगाब्द ५१०४ (ईस्वी सन् २००२) में ५० कनाल १६ मरले भूमि प्राप्त हुई और इस स्थान पर हिमाचल प्रदेश के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्र के लोकप्रिय पुरोधा स्व०ठाकुर जगदेव चन्द के नाम पर एक इतिहास शोध केन्द्र की स्थापना की प्रक्रिया आरम्भ हुई और इस शोध केन्द्र को नाम दिया गया– ठाकुर जगदेवचन्द स्मृति शोध संस्थान, नेरी, जिला हमीरपुर (हिमाचल प्रदेश) । इस शोध संस्थान की स्थापना में श्री चेतराम जी प्रान्त कार्यवाह की सक्रिय भूमिका रही है।

कलियुगाब्द ५१०४ आश्विन नवरात्र के पहले दिन ७ अक्तूबर, २००२ को एक भव्य समारोह में हिमाचल प्रदेश के माननीय मुख्यमन्त्री प्रो० प्रेम कुमार धूमल के कर कमलों द्वारा शोध संस्थान का भूमि पूजन एवं शिलान्यास किया गया। इस अवसर पर प्रो० धूमल ने अपने सारगर्भित उद्बोधन में भारतीय इतिहास की विकृतियों को दूर करने के लिए इतिहास के पुनर्लेखन पर बल दिया और शोध संस्थान को पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। उस समय से ही प्रो० धूमल का शोध संस्थान की समृद्धि के लिए पूरा सहयोग एवं मार्गदर्शन मिल रहा है।

शोध संस्थान के निर्माण कार्य में मुम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति स्वर्गीय श्री इन्द्रजीत कपूर जी का योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा। उन्होंने इसे अपना निजी कार्य समझ कर निष्काम भाव से ६५ लाख रुपये का योगदान दिया है। शोध संस्थान के प्रथम भवन का नाम स्व० कपूर जी की पूज्या माता जी के नाम पर श्रीमती उत्तम देवी कपूर भवन रखा गया। इस भवन का उद्घाटन फाल्गुन शुक्ल ११, कलियुगाब्द ५१०६ (ईस्वी सन् २१ मार्च २००५) को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह माननीय मोहन राव भागवत के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

परम पूज्य गुरु गोलवलकर जी के जन्मशताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में शोध संस्थान के दूसरे चरण में माधव भवन का उद्घाटन प०पू० सरसंघचालक माननीय श्री कुप्प० सी० सुदर्शन जी के कर कमलों द्वारा कार्तिक शुक्ल ५, कलियुगााब्द ५१०८(२७ अक्तूबर २००७) को सम्पन्न हुआ। माधव भवन में पुस्तकालय, अभिलेखागार, संग्रहालय एवं सभागार का समुचित प्रावधान है। इसी अवसर पर शोध संस्थान में "तथाकथित विश्वविजेता सिकन्दर महान का भारत पर आक्रमण तथा उसका द्विगर्त जम्मू के चन्द्रभागा क्षेत्र में डोगरा वीरों के हाथो मारा जाना" विषय पर तीन दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन हुआ। जिसमें देश भर के विद्वानों ने भाग लिया। इस परिसंवाद से इतिहास का यह सत्य स्पष्ट हुआ है कि तथाकथित विश्वविजेता सिकन्दर महान् न तो महान् था न ही विश्वविजेता था, क्योंकि भारतवर्ष की धरती पर उसका विश्वविजयी बनने का अभिमान ध्वस्त हो गया था।

इस वर्ष वैशाख शुक्ल ५,७,८ कलियुगाब्द ५११० तदनुसार १०,११,१२ मई २००८ को इस शोध संस्थान में लोक परम्परा में सृष्टि रचना विचार विषय पर राष्ट्रीय परिसंवाद होगा। इस परिसंवाद से हमारी ऋषि परम्परा से सम्पन्न लोक परम्परा में प्रचलित सृष्टि रचना के महत्त्वपूर्ण पहलू प्रकाश में आएंगे।

इतिहास दिवाकर त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन शोध संस्थान के ध्येय की ओर बढ़ता एक महत्त्पूर्ण कदम है। इससे हमारे इतिहास और संस्कृति की वास्तविक तस्वीर सामने आएगी।

भारत को फिर से महान भारत बनाने के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यकता है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाये, जो दावानल की तरह सारे देश को चारों ओर से लपेट ले। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जाये। हिमालय से कन्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र वे धधक उठें।

स्वामी विवेकानन्द

वन्दे मातरम्

सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलाम् मातरम्।
वन्दे मातरम्।।१।।
शुभ्रज्योत्सनां पुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्।
वन्दे मातरम्।।२।।
कोटि कोटि कंठ कलकल निनाद कराले
कोटि कोटि भुजैर्धृत खरकरवाले
अबला केनो माँ एतो बोले
बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीम् मातरम्।
वन्दे मातरम्।।३।।
तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वं हि प्राणा: शरीरे
बाहु ते तुमि माँ शक्ति
हृदये तुमि माँ भक्ति
तामारई प्रतिमा गोड़ि मन्दिरे मन्दिरे,मातरम।
वन्दे मातरम्।।४।।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी,
नमामि त्वां, नमामि कमलाम्
अमलाम्, अतुलाम,
सुजलाम्, सुफलाम्, मातरम्।
वन्दे मातरम्।।५।।
श्यामलाम्, सरलाम्, सुस्मिताम्, भूषिताम्
धरणीम, भरणीम्, मातरम्।
वन्देमातरम्।।६।।

बाबा बालक नाथ जी मन्दिर समूह तलाई, जिला बिलासपुर (हि0 प्र0)
सिद्ध बाबा बालक नाथ जी की तपोस्थली शाहतलाई

भारतीय संस्कृति की विराट पृष्ठ भूमि में विद्यमान दिव्य स्थलों में से भारत की सुप्रसिद्ध देवी–देवताओं व ऋषि–मुनियों की धरती कही जाने वाली हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिले के घुमारवीं उपमण्डल में शाहतलाई(छाः तलाई) की पावन धरती पर बाबा बालक नाथ जी की तपोस्थली स्थित है। यह पावन स्थल शिमला से 135 कि0मी0, रेलवे स्टेशन ऊना से 80 कि0मी0 तथा हमीरपुर से 48 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।

हिमाचल प्रदेश सार्वजनिक धार्मिक संस्थान एवं पूर्त विन्यास अधिनियम, 1984 के अन्तर्गत दिनांक 30 जून 1993 से इस मन्दिर का प्रबन्ध न्यास ने संभाला है।

बाबा जी की आदि तपोस्थली वट वृक्ष मन्दिर, जहां बाबा जी ने अखण्ड तपस्या की थी, बाबा जी का धूना मन्दिर, जो निरन्तर चलता रहता है, मन्दिर लस्सी व रोटियां, जहां बाबा जी ने चिमटा गाड़कर 12 वर्ष की रोटियां व लस्सी दबाई थी, मन्दिर गुरन (गरना)झाड़ी जहां बाबा जी गऊएं चराते समय आराम करते थे, तपोस्थली से लगभग 100 मी0 की दूरी पर स्थित है, आदि प्रमुख दर्थनीय स्थल है। यहां प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु देश–विदेश से इन पावन स्थलों के दर्शन करने आते हैं। बाबा जी की तपोस्थली शाहतलाई में चैत्र मास के ऐतिहासिक मेले 13 मार्च से 14 अप्रैल तक होते हैं। मन्दिर न्यास ने श्रद्धालुओं/यात्रियों की सुविधाओं व सेवाओं के लिए बड़े पैमाने पर विकास कार्य करवाए हैं जिनका विवरण इस प्रकार हैः–

1. मन्दिर परिसर में संगमरमर पत्थर लगवाया 2. मन्दिर वट वृक्ष तपोस्थली का निर्माण 3. मन्दिर परिसर में रेलिंग का कार्य 4. मन्दिर परिसर में पेयजल व्यवस्था 5. मन्दिर परिसर का विद्युतिकरण 6. जूतों को रखने के स्थान का निर्माण कार्य 7. शौचालयों/मूत्रालयों का निर्माण कार्य 8. मन्दिर न्यास द्वारा तलाई क्षेत्र में तीन हैण्डपम्प लगवाना 9. मन्दिर गुरना झाड़ी में संगमरमर तथा परिसर में नीला पत्थर लगाने का कार्य प्रगति पर है 10. मन्दिर न्यास द्वारा लंगर भवन, सराएं का निर्माण किया गया है जिस पर 34 लाख रुपये व्यय किये गये है। मन्दिर व तलाई बाजार में पौधारोपण करवाया गया 12. तलाई चौक में हाई मास्ट लाईट लगवाई गई ।

प्रस्तावित कार्य :– 1. मन्दिर 2 को भव्य रूप देने बारे, इस पर लगभग 65 लाख रुपये खर्च होंगें। 2. लंगर भवन की तृतीय मंजिल पर प्रथासनिक ब्लॉक का निर्माण कार्य प्रस्तावित है।

उपरोक्त निर्माण कार्य में आर्थिक सहयोग (दान) देकर पुण्य के भागीदार बने तथा बाबा जी का आशीर्वाद तथा आत्मिक सुख प्राप्त करें।

पंकज राय(हि०प्र०से०)
अध्यक्ष (एस०डी०एम०)
मन्दिर न्यास बाबा बालक नाथ जी,
शाहतलाई, जिला बिलासपुर(हि०प्र०)

देवेश कुमार (भा०प्र० से०)
आयुक्त (उपायुक्त)
मन्दिर न्यास बाबा बालक नाथ जी,
शाहतलाई, जिला बिलासपुर(हि०प्र०)

मन्दिर न्यास श्री नयना देवी जी जिला बिलासपुर हिमाचल प्रदेश

सिद्ध शक्ति पीठ माता श्री नयना देवी जी का मन्दिर उत्तरी भारत का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। यहां पर न केवल भारतवर्ष से परन्तु विदेशों से भी बड़ी संख्या में श्रद्धालु आते हैं। हर वर्ष यहां पर तीन बड़े मेले चैत्र, श्रावण व आश्विन मास के नवरात्रों में होते हैं तथा साल भर श्रद्धालु माता जी के दर्शनों के लिए भारी संख्या में आते रहते है। मन्दिर न्यास द्वारा यात्रियों की सुविधा हेतु निम्न प्रबन्ध किए गए हैः

उपलब्ध सुविधायें:–

1. मन्दिर परिसर एवं लंगर में आधुनिक तकनीक द्वारा मशीनों से सफाई व्यवस्था का प्रबन्ध किया गया है। बस अड्डा पर आधुनिक यात्री निवास मातृ आंचल में ठहरने की व्यवस्था। आयुर्वेदिक औषधालय में निःशुल्क चिकित्सा सुविधा । दोनों समय लंगर में निःशुल्क भोजन व नाश्ता। धर्मशालाओं में निःशुल्क कमरों का प्रावधान। कौलां वाला टोवा से मन्दिर परिसर तक विभिन्न स्थलों पर सुलभ शौचालयों एवं स्नानागार की व्यवस्था। मातृ आंचल में वीआईपी कमरों की व्यवस्था। मातृ आंचल में कैन्टीन में अच्छा एवं सस्ता खाना उपलब्ध। नए बस अड्डे पर छोटे वाहन खड़ा करने की सुविधा। यात्रियों के सामान रखने के लिए बस अड्डे पर क्लाक रूम उपलब्ध। श्रद्धालुओं के लिए शुद्ध देसी घी का हलवा न्यास की दुकान पर उपलब्ध। संस्कृत महाविद्यालय में निशुःल्क शिक्षा उपलब्ध। यात्रियों की सुविधार्थ निःशुल्क कमरे, कम्बल और रजाईयों का प्रबन्ध। श्रद्धालुओं की सुविधार्थ मन्दिर के समीप "मातृशरण" भवन का निर्माण। श्रद्धालुओं की सुविधार्थ मन्दिर वाले रास्ते में वर्षा शालिकाओं का निर्माण। बस अड्डा से मन्दिर तक दोहरे रास्ते का निर्माण। मन्दिर के समीप हवाई पुल का निर्माण। बस अड्डा के समीप यात्रियों के ठहरने के लिए "मातृ छाया" भवन का निर्माण । मन्दिर परिसर में ब्रास रेलिंग लगवाना। कौलां वाला टोवा व मन्दिर श्री नयना देवी जी के क्षेत्र में फ्लड लाईट का लगवाना।

2. प्रस्तावित योजनाएं :

मन्दिर परिसर का सौन्दर्यकरण। श्री नयना देवी जी के क्षेत्र का मास्टर प्लान बनवाना। । घघांडल में पार्किगं स्थल का निर्माण। मन्दिर के रास्ते में अतिरिक्त शौचालयों का निर्माण। कौलां वाला टोवा से श्री नयना देवी जी से सड़क को पक्का करना। कौलां वाला टोवा में स्वागत द्वार का निर्माण करना। कौलां वाला टोवा में तालाब का सौन्दर्य करण एवं उसमें साफ पानी ड़ालना। कौंला वाला टोवा में शौचालय एवं स्नानागृह का निर्माण। श्री नयना देवी जी क्षेत्र में पौधरोपण। वर्षा का जल संग्रहण, भण्डारण एवं प्रबन्धन। सिंह द्वार न०2 के पास हवाई पुल का निर्माण।

जे०सी०शर्मा
मन्दिर अधिकारी,
मन्दिर न्यास श्री नयना देवी जी
जिला बिलासपुर (हि०प्र०)

पी०सी० अकेला
अध्यक्ष (एस०डी०एम०)
मन्दिर न्यास श्री नयना देवी जी
जिला बिलासपुर (हि०प्र०)

देवेश कुमार
आयुक्त (उपायुक्त)
मन्दिर न्यास श्री नयना देवी जी
जिला बिलासपुर (हि०प्र०)